अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

नवम्बर २०१९

भागवत ज्वाला

अग्निशिखा नवम्बर २०१९ वर्ष ५०, अंक ४, पूर्णांक ५९१

विषय-सूची

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय		३
हमारी मर्त्यता में अमरता का प्रवेश		५
एक जीवन से दूसरे जीवन का यात्री		१४
अस्थायी चीज़ों में विद्यमान शाश्वत बीज		२८
'पुरोधा' : दैनन्दिनी		३९
काक-परिचय (२)	श्री कृष्णलाल भट्ट	४२
भगवान् के साथ आध घण्टा	नवजातजी	४४
"मेरी नन्हीं मुस्कान" के नाम पत्र	'श्रीमातृवाणी' से	४६
'योग के तत्त्व' : कर्म	श्रीअरविन्द	५१
यदि! (कविता)	अज्ञात	५६
अगला पड़ाव—मृत्यु	वन्दना	५७

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तें स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,

पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

सन्देश

मधुर माँ,

मृत्यु के समाचार को कैसे लिया जाये, विशेषकर जब मृत व्यक्ति हमारा निकटस्थ हो?

परम प्रभु से कहो, "तेरी इच्छा पूर्ण हो" और जितना हो सके उतने शान्त रहो।

अगर बिछुड़ा हुआ व्यक्ति तुम्हें प्यारा हो तो तुम्हें उस पर अपने प्रेम को शान्ति और स्थिरता में एकाग्र करना चाहिये क्योंकि यही चीज़ दिवंगत व्यक्ति को सबसे अधिक सहायता दे सकती है।

आशीर्वाद।

१६ जनवरी १९७०

सम्पादकीय : हमारे योग में अपनी चैत्य सत्ता की खोज ही सबसे महत्त्वपूर्ण अन्वेषण है। लेकिन उसके पहले हमें इस बात से अभिज्ञ होना चाहिये कि हमारे अन्दर यह विशेष भागवत तत्त्व है क्या?

और जहाँ मनुष्य का उल्लेख हो, उसकी चैत्य सत्ता के बारे में बात हो, वहाँ मनुष्य की संगी मृत्यु का भी प्रवेश हो जाता है।

इस अंक में हम मनुष्य के जीवन में चैत्य सत्ता, उसकी विशेष भूमिका, साथ ही हमारे योग में उसकी महत्ता के बारे में चञ्चुपात करेंगे। वस्तुतः मृत्यु क्या है, उसे हमें किस दृष्टि से देखना चाहिये इस विषय पर भी कुछ प्रकाश डालने का हमारा प्रयास रहेगा।

हमारा यह शारीरिक आभास ही सब कुछ नहीं है;
यह रूप छलना है, यह व्यक्तित्व एक मुखौटा है;
मानव के अन्तर में गुह्य स्वर्गिक शक्तियाँ गोपनीयता में रह सकती हैं।
उसका भंगुर जहाज़ वर्षों के सागर के मध्य से
परम अविनाशी को गोपनीयता से वहन कर ले जाता है।
उसमें एक आत्मा, परमेश्वर की एक शिखा वास करती है,
जो उस चरम-आद्‌भुत्य का एक तेजोमय अंश है,
वह अपने आत्म-सौन्दर्य और सुखानन्द का रचनाकार है,
यही हमारी मर्त्य दरिद्रता में अमरत्व है।

'सावित्री', पृ. २३ —श्रीअरविन्द

हमारी मर्त्यता में अमरता का प्रवेश

परमात्मा, आत्मा, जीवात्मा

अपनी प्रकृति में आत्मा परात्पर या वैश्व है; जब वह व्यक्तिगत रूप धारण कर शरीर की केन्द्रीय सत्ता बन जाती है तब वह जीवात्मा होती है। जीवात्मा विश्व के साथ अपनी एकात्मता अनुभव करती है, साथ ही, विभाजन के होते हुए भी, भगवान् का एक अंश होती है।

स्व, केन्द्रीय सत्ता तथा चैत्य सत्ता

स्व है आत्मा, ब्रह्म, तात्त्विक प्रभु।

जब एकमेव प्रभु अपनी स्वाभाविक अनेकता में स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं, यह तात्त्विक 'स्व' या आत्मा उस अभिव्यक्ति में जीवात्मा का रूप ले लेती है—उस केन्द्रीय सत्ता का जो अपनी कई वैयक्तिक विशेषताओं के साथ नीचे के पार्थिव जीवन के ऊपर छायी रहती है, लेकिन अपने-आपमें वह 'भगवान्' का शाश्वत अंश है और इस पृथ्वी के जन्म के पहले से ही यहाँ विद्यमान है—यह है *परा प्रकृति*।

अपनी निम्न, अथवा *अपरा प्रकृति* में यह दिव्य अंश मनुष्य में अन्तरात्मा के रूप में प्रकट होता है—दिव्य अग्नि की एक चिनगारी के रूप में—जो व्यक्ति की प्रगति, उसकी मानसिक, प्राणिक और भौतिक सत्ता को सहारा दिये रहती है। जैसे-जैसे मनुष्य चेतना में विकसित होता जाता है चैत्य सत्ता की यह चिनगारी अग्नि में धधक उठती है। इसलिए कहा जा सकता है कि चैत्य सत्ता एक बार धरती पर उतर आये तो क्रम-विकास में आगे ही आगे बढ़ती रहती है...।

CWSA खण्ड २८, पृ. ५५-५६

केन्द्रीय सत्ता तथा अन्तरात्मा दोनों भिन्न तरीक़ों से भगवान् के ही अंश हैं। वास्तव में ये समान सत्ता के दो पहलू हैं, बस फ़र्क यह है कि एक 'प्रकृति' के ऊपर अपरिवर्तनीय स्थिति में छाया रहता है, जब कि दूसरा प्रकृति में एक चैत्य सत्ता का विकास करता है।

जीवात्मा

हमारे योग में "केन्द्रीय सत्ता" वाक्यांश सामान्यतः हमारे अन्दर स्थित भगवान् के उस अंश के लिए प्रयुक्त होता है जो बाक़ी सबको सहारा देता और जन्म और मृत्यु के चक्र में भी बना रहता है। इस केन्द्रीय सत्ता के दो रूप होते हैं—ऊपर है जीवात्मा, हमारी सच्ची सत्ता, जिसके बारे में हम तभी अभिज्ञ होते हैं जब उच्चतर ज्ञान आता है—नीचे होती है वह चैत्य सत्ता जो मन, शरीर और प्राण के पीछे खड़ी रहती है। जीवात्मा जीवन में अभिव्यक्ति के ऊपर स्थित होकर वहाँ से सञ्चालन करती है; चैत्य सत्ता अभिव्यक्ति के पीछे रह कर जीवन को सहारा देती है।

CWSA खण्ड २८, पृ. ६०-६१

चैत्य पुरुष

अन्तरात्मा तथा चैत्य सत्ता क़रीब-क़रीब एक और समान ही हैं, सिवाय इसके कि जिनमें चैत्य सत्ता का विकास नहीं होता है उनमें भी 'भगवान्' की एक चिनगारी मौजूद रहती है जिसे अन्तरात्मा कहा जा सकता है। संस्कृत में चैत्य सत्ता को ही हृत-पुरुष या चैत्य-पुरुष कहा जाता है। (चैत्य सत्ता है—क्रमविकास में विकसित होती हुई अन्तरात्मा।)

CWSA खण्ड २८, पृ. ८२

अन्तरात्मा

अन्तरात्मा है भगवान् का वह अंश जो विकसित होते हुए व्यक्ति के अन्तरतम का आधार है और वही मन, प्राण तथा शरीर को सहारा देती है; ये ही हैं प्रकृति के वे साधन जिनके द्वारा अन्तरात्मा भौतिक निश्चेतना से निकल कर उस भागवत 'ज्योति' तथा 'अमरता' की ओर विकसित होने का प्रयास करती है जो उसके सच्चे निवास-स्थान हैं। अन्तरात्मा पर लगी मन, प्राण तथा शरीर की सीमाएँ ही व्यक्ति के अन्दर निम्न गतियों को स्वीकार करतीं तथा अपने और प्रकृति के बीच एक समझौता कर लेती हैं और यही समझौता व्यक्ति की सभी उच्च गतियों पर लगाम लगाना चाहता है, हालाँकि व्यक्ति आगे बढ़ सकता है, लेकिन यह लगाम उसे पीछे खींचे रखती है। वस्तुतः, चैत्य सत्ता अन्तरात्मा का वह रूप या अन्तरात्मा का

वह व्यक्तित्व है जो क्रमविकास की इस प्रक्रिया में तब तक एक जीवन से दूसरे जीवन में विकसित होता हुआ गुज़रता रहता है जब तक कि वह अज्ञान के परे जाकर उच्चतर चेतना में नहीं पहुँच जाता।

आत्मा

आत्मा और चैत्य समान नहीं हैं—आत्मा है वह स्व जो सभी में एकमेव, अचञ्चल, विस्तृत, हमेशा शान्त, हमेशा मुक्त रहता है। चैत्य सत्ता अन्दर स्थित वह अन्तरात्मा है जो जीवन का अनुभव लेती है और विकसित होते हुए मन, प्राण तथा शरीर के साथ-साथ विकास करती रहती है। प्राण तथा शरीर की तरह चैत्य दुःख नहीं झेलता, उसके अन्दर तकलीफ़, वेदना या निराशा नहीं होतीं; लेकिन उसके अन्दर होता है एक चैत्य दुःख जो इन चीज़ों से एकदम अलग है। उसके अन्दर एक तरह की शान्त-सौम्य उदासी होती है जिसे वह तब अनुभव करता है जब चीज़ें 'भगवान्' के विरुद्ध जाती हैं, जब अन्धकार और बाधाएँ बहुत भारी हो जाती हैं, जब मन, प्राण तथा शरीर दूसरी-दूसरी चीज़ों के पीछे भागता फिरता है, जब अशुभ, मिथ्यात्व तथा अन्धकार 'प्रकाश' पर भारी पड़ते दीखते हैं। वह हताश तो नहीं होता, लेकिन यह अनुभव ज़रूर करता है कि इन चीज़ों को नहीं होना चाहिये और इनको बदलने के लिए चैत्य उत्कण्ठा इतनी अधिक तीव्र हो उठती है कि ऐसा लगता है मानों चैत्य उदासी में डूब गया है।
CWSA खण्ड २८, पृ. ११०, १०८

चैत्य का प्रवेश

बहुधा यह कहा जाता है कि बच्चे जब सात वर्ष के हो जाते हैं तब अपने चैत्य पुरुष द्वारा अधिकृत होते हैं। इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है?

यह बात ठीक नहीं है। ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनका चैत्य पुरुष जन्म के पहले से, यहाँ तक कि अपनी माँ के गर्भ में आने के पूर्व से ही शरीर-निर्माण का निरीक्षण करता है। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जिनका चैत्य पुरुष जिस क्षण उनका प्रथम क्रन्दन उनके मुँह से निकलता है ठीक उसी क्षण उनके

साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। ऐसे लोग भी होते हैं जिनका चैत्य पुरुष उनके जन्म के कुछ घण्टे बाद अथवा कुछ दिन, या कुछ सप्ताह, कुछ माह, कुछ वर्ष बाद आता है अथवा... कभी नहीं आता!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १६६

मैं ऐसे बच्चों से मिली हूँ जो पाँच वर्ष की अवस्था में अपने चैत्य पुरुष के विषय में अपनी १४ वर्ष की अवस्था की अपेक्षा बहुत अधिक सचेतन थे, और १४ वर्ष में २५ वर्ष की अपेक्षा अधिक सचेतन थे; और अधिकतर, जिस क्षण से बच्चे विद्यालय जाते हैं जहाँ वे उस ढंग का तीव्र मानसिक प्रशिक्षण पाते हैं जो उनका ध्यान उनकी सत्ता के बौद्धिक अंश की ओर खींच ले जाता है, वे लगभग सर्वदा और लगभग पूर्ण रूप में अपने चैत्य पुरुष के साथ का यह सम्पर्क खो बैठते हैं।

सावधानी के साथ छोटे बच्चों की आँखों में ताको और तुम एक प्रकार की ज्योति देखोगे—कुछ लोग उसे स्पष्टता या सरलता कहते हैं—पर इतनी सच, इतनी सच! वह संसार को आश्चर्य के साथ ताकता है। हाँ, आश्चर्य का यह भाव, चैत्य पुरुष का आश्चर्य है जो सत्य को देखता है पर संसार के विषय में बहुत नहीं समझता, क्योंकि वह इस संसार से बहुत दूर है। बच्चों में यह चीज़ होती है पर जैसे-जैसे वे अधिक सीखते हैं, अधिक बुद्धिमान् बनते हैं, अधिक शिक्षित होते हैं, यह चीज़ लुप्त हो जाती है, और तुम उनकी आँखों में सभी प्रकार की चीज़ें देखते हो: विचार, कामनाएँ, आवेग, दुष्टताएँ इत्यादि—परन्तु इस प्रकार की नन्हीं लौ, जो इतनी पवित्र होती है, अब वहाँ नहीं होती। और तुम निश्चित रूप से यह जान सकते हो कि वहाँ मन घुस आया है और चैत्य पुरुष बहुत दूर पीछे चला गया है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ३१-३२

देवता तथा चैत्य सत्ता

देवता दोषमुक्त होते हैं, क्योंकि वे अपनी प्रकृति के अनुसार, सहज रूप से, बिना किसी दबाव के जीते हैं; जीने का उनका यह धार्मिक तरीक़ा होता है। लेकिन अगर हम इसे उच्चतर दृष्टिकोण से देखें, अगर व्यक्ति के

अन्दर उच्चतर दर्शन हो, समस्त को देखने का अन्तर्दर्शन, तो वह देखेगा कि उनमें मनुष्यों की अपेक्षा गुण कम होते हैं।... यह जानी-मानी बात है कि अपने प्रेम और आत्म-दान की क्षमता के द्वारा मनुष्यों में देवताओं के जितनी या उनसे भी अधिक शक्ति हो सकती है—जब वे अहंकारी नहीं होते, जब वे अपने अहंकार पर विजय पा लेते हैं।

निश्चित रूप से देवताओं की अपेक्षा मनुष्य परम प्रभु के अधिक निकट होता है—बशर्ते कि वह आवश्यक शर्तें पूरी करे, वह यान्त्रिक रूप से निकट नहीं होता, लेकिन उसके अन्दर वह शक्ति होती है, वह सम्भावना होती है कि परम प्रभु के समीप पहुँच जाये।

९ अगस्त १९५८ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

क्या देवता पहले से ही पूरी तरह सचेतन नहीं होते?

नहीं, उनके अन्दर चैत्य सत्ता नहीं होती, इस कारण जीवन का वह सम्पूर्ण पक्ष उनके लिए अस्तित्व ही नहीं रखता।

यहाँ, भारत की सभी परम्पराओं में (साथ ही, दूसरे देशों तथा दूसरे धर्मों में भी), बहुधा ये देवगण बहुत अजीब तरह से, प्रायः असम्भव रूप से व्यवहार करते हैं! इसका कारण बस यही है कि इनमें कोई चैत्य सत्ता नहीं होती। चैत्य सत्ता एक ऐसी चीज़ है जो विशेष रूप से पार्थिव जीवन के साथ ही सम्बन्ध रखती है; यह कृपा के रूप में हमें दी गयी है... जो किया जा चुका है उसे फिर से ठीक करने के लिए यह कृपा हमें प्रदत्त की गयी है।

जी, लेकिन क्या देवता भगवान् के प्रति सचेतन नहीं होते?

देखो, मेरे बच्चे, वे अपने देवत्व के प्रति सचेतन होते हैं, विशेष रूप से उसी के प्रति सचेतन होते हैं!

हाँ, यह सच है कि उनका भगवान् के साथ सम्बन्ध होता है, लेकिन मुझे अपने अनुभव से पता है कि समर्पण क्या है इसका हलका-सा भाव भी उनके अन्दर नहीं होता।

२ अगस्त १९६१ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

अहंकार तथा कल की अतिमानवता

मानवजाति के आरम्भ में अहंकार एक करने वाला तत्त्व था। अहंकार के ही चारों ओर सत्ता के विभिन्न स्तरों का निर्माण हुआ था। लेकिन अब, जब कि अतिमानवता हमारे दरवाज़े पर दस्तक दे रही है, उसका जन्म होने-होने को है, अहंकार को ग़ायब हो जाना और अपना स्थान उस चैत्य सत्ता के लिए छोड़ देना चाहिये जो मानव में भगवान् को अभिव्यक्त करने के लिए भागवत माध्यम के द्वारा धीरे-धीरे विकसित हो गयी है।

भगवान् मनुष्य के अन्दर चैत्य प्रभाव-तले अभिव्यक्त होते हैं और इसी तरह से अतिमानवता के आगमन की तैयारी की जाती है।

चैत्य सत्ता अमर है, उसके द्वारा पृथ्वी पर अमरता अभिव्यक्त हो सकती है। अतः, अब महत्त्वपूर्ण चीज़ है—अपनी चैत्य सत्ता को पाना, उसके साथ एक होना, और उसे इसकी अनुमति देना कि अहंकार के स्थान पर वह आ जाये, जिसकी वजह से अहंकार या तो बदलने के लिए या फिर ग़ायब हो जाने के लिए विवश हो जायेगा।

८ फ़रवरी १९७२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

अहंकार बाधा है। मानवता को ढालने के लिए अहंकार अनिवार्य था, लेकिन अब हम अतिमानवता को गढ़ने के पथ पर हैं—परा-मानवता। अहंकार का कार्य पूरा हुआ—उसने अपनी भूमिका अच्छी तरह निभायी, अब उसे विदा लेनी होगी। और अब चैत्य सत्ता को—जो मनुष्य के अन्दर भगवान् का प्रतिनिधित्व करती है—बने रह कर नयी प्रजाति में स्थानान्तरित होना होगा। अतः, अब हमें अपनी सारी सत्ता को चैत्य के चारों ओर इकट्ठा करना सीखना होगा। जो लोग परा-मानवता में पदार्पण करना चाहते हैं उन्हें अहंकार से पिण्ड छुड़ाना और अपने-आपको चैत्य सत्ता के इर्द-गिर्द एकाग्र करना होगा।

१३ अप्रैल १९७२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

पशु तथा चैत्य

जानवरों में भी कभी-कभी बहुत तीव्र चैत्य सत्य विद्यमान रहता है। स्वाभाविक है कि एक पशु की अपेक्षा एक बालक में चैत्य पुरुष कुछ

अधिक गठित, कुछ अधिक सचेत होता है, ऐसा मैं समझती हूँ। परन्तु मैंने जानवरों के साथ, केवल जानने के लिए, परीक्षण किये हैं; मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मनुष्यों में मैंने बहुत सहज, बहुत सरल गुणों को विरले ही देखा है। उन्हीं गुणों को मैंने पशुओं में देखा है, जैसे बिल्लियों में: मैंने बिल्लियों का बहुत अध्ययन किया है; यदि कोई उन्हें भली प्रकार जाने तो वे अद्‌भुत प्राणी हैं। मैंने ऐसी माता-बिल्लियों को देखा है जिन्होंने अपने बच्चों के लिए पूर्णतः अपने-आपको उत्सर्ग कर दिया—लोग इतने अधिक आदर के साथ मातृ-प्रेम की चर्चा करते हैं, मानों यह केवल मानवीय विशेषता हो। परन्तु मैंने माँ-बिल्लियों के अन्दर साधारण मनुष्य की क्षमता के परे की मात्रा में इसे अभिव्यक्त होते हुए देखा है। मैंने एक माँ-बिल्ली को देखा है जो तब तक अपना खाना कभी छूती भी नहीं थी जब तक कि उसके बच्चे अपनी आवश्यकता के अनुसार ग्रहण न कर लें। मैंने एक दूसरी बिल्ली को देखा है जो आठ दिन तक लगातार अपने बच्चों के पास, स्वयं अपनी कोई आवश्यकता पूरी किये बिना, पड़ी रही, क्योंकि वह उन्हें अकेले छोड़ने से डरती थी; और एक बिल्ली अपने बच्चे को यह सिखाने के लिए कि एक दीवार से एक जँगले तक कैसे कूदना चाहिये, पचास बार से अधिक एक ही क्रिया दोहराती रही और मैं इतना और जोड़ दूँ कि वह ऐसी सावधानी, बुद्धिमत्ता, कुशलता के साथ करती रही जो बहुत-सी अशिक्षित औरतों में नहीं होती। और ऐसा क्यों था?... क्योंकि वहाँ कोई मानसिक हस्तक्षेप नहीं था। यह एकदम स्वाभाविक सहज बोध था। परन्तु सहज बोध है क्या चीज़?—जाति-विशेष में विद्यमान भगवान् की उपस्थिति, और वही है पशुओं का चैत्य; व्यक्तिगत नहीं, समष्टिगत चैत्य।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ३२-३३

वानस्पतिक जगत् में चैत्य उपस्थिति

मैंने चैत्य उपस्थिति और प्रकम्पन के प्रथम मूलरूप को वानस्पतिक जीवन में देखा है, और वास्तव में जिस प्रस्फुटन को हम फूल कहते हैं वह चैत्य उपस्थिति का प्रथम प्राकट्य होता है। चैत्य केवल मनुष्य में व्यक्तिभावापन्न होता है, पर वह मनुष्य से पहले भी विद्यमान था; परन्तु यह उसी प्रकार की व्यक्तिभावापन्न अवस्था नहीं है जैसी कि मनुष्य में होती है,

यह कहीं अधिक तरल होती है : यह एक शक्ति के, चेतना के रूप में प्रकट होती है, न कि किसी व्यक्तित्व के रूप में। उदाहरण के लिए, गुलाब को ले लो; इसके रूप, रंग, सुगन्ध की महान् पूर्णता एक प्रकार की अभीप्सा तथा चैत्य आत्मदान को प्रकट करती है। सूर्य का प्रथम स्पर्श पाने पर सुबह के समय गुलाब को खिलते हुए देखो, वह अभीप्सा के रूप में अपूर्व आत्मदान की प्रतिमूर्ति होता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १९६-९७

निर्वाण तथा चैत्य सत्ता

प्राण के परे निर्वाण है, चैत्य के परे निर्वाण है, मन के परे निर्वाण है; हर स्तर पर एक निर्वाण है, यहाँ तक कि भौतिक के परे भी—वह है मृत्यु। और जो लोग अपने-आपको पीछे खींच लेते हैं, निर्वाण को प्राप्त करने की कोशिश करते हैं, कभी चैत्य में नहीं पहुँचते—चैत्य अनिवार्य रूप से भागवत अभिव्यक्ति के साथ सम्बन्ध रखता है, भगवान् का जहाँ हस्तक्षेप न हो, जहाँ निर्वाण हो, वहाँ चैत्य का वास नहीं होता।

१३ अगस्त १९६३ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

दिव्य माँ का बालक

चित्-शक्ति या भागवत शक्ति माँ हैं—जीवात्मा उनका एक अंश है, चैत्य या अन्तरात्मा उस अंश में एक चिनगारी है। अहंकार है, चैत्य या जीवात्मा की विकृत परछाईं।

*

कभी-कभी मुझे महसूस होता है मानों मैं श्रीमाँ का एक अंश हूँ और यहाँ पृथ्वी पर उनका कार्य करने के लिए ही उतरा हूँ। फलस्वरूप, मुझे कई सारे मानव-जीवनों में से गुज़रते हुए दुःख, वियोग, कष्ट, मिथ्यात्व और अज्ञान सहना ही पड़ेगा।

पृथ्वी पर उतरी हर एक अन्तरात्मा के लिए यह सच है कि वह भगवती माँ का ही एक अंश होती है और वह अज्ञान की अनुभूतियों से इसलिए

गुज़रती है ताकि अपनी सत्ता के सत्य को पा ले और 'भागवत अभिव्यक्ति' का यन्त्र बन कर यहाँ धरती पर कार्य कर सके।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ६१

जो 'क्ष' के भौतिक शरीर को जन्म देने में निमित्त थी वह, निस्सन्देह, अपने जीवन-काल में उसकी भौतिक जननी थी। लेकिन यहाँ श्रीमाँ और 'क्ष' के बीच (और श्रीमाँ तथा उन्हें स्वीकार करने वाले सभी साधकों के बीच) जो सम्बन्ध है वह चैत्य तथा आध्यात्मिक मातृत्व का है। भौतिक माँ का अपने बच्चे के साथ जो सम्बन्ध होता है उसकी अपेक्षा यह कहीं अधिक महान् सम्बन्ध है; यह वह सब कुछ देता है जो मानव मातृत्व दे सकता है, लेकिन बहुत उच्चतर रूप में और इस सम्बन्ध के अन्दर अनन्त गुना अधिक कुछ और भी होता है। क्योंकि यह अधिक महान् और पूर्ण होता है, अतः, यह पूरी तरह से भौतिक सम्बन्ध का स्थान लेकर आन्तरिक और बाहरी दोनों प्रकार के जीवन में कार्य करता है।
CWSA खण्ड ३२, पृ. १०८

श्रीमाँ के प्राकट्य तथा अतिमानस के अवतरण में कोई अन्तर है?

श्रीमाँ अतिमानस को नीचे लाने के लिए ही आती हैं और अतिमानस का अवतरण होने पर ही उनका यहाँ पूर्ण रूप से अभिव्यक्त होना सम्भव होता है।

*

केवल एक ही दिव्य शक्ति है जो विश्व में भी कार्य करती है और व्यक्तियों में भी, और फिर जो व्यक्ति और विश्व के परे भी है। श्रीमाँ इन सबकी प्रतिनिधि हैं, पर वे यहाँ शरीर में रह कर कुछ ऐसी चीज़ उतारने के लिए कार्य कर रही हैं जो अभी तक इस स्थूल जगत् में इस तरह अभिव्यक्त नहीं हुई है कि यहाँ के जीवन को रूपान्तरित कर सके–अतः, तुम्हें उनको इस उद्देश्य से यहाँ कार्य करने वाली भगवती शक्ति समझना चाहिये। वे अपने शरीर में वही हैं, पर अपनी सम्पूर्ण चेतना में वे भगवान् के सभी स्वरूपों के साथ अपना तादात्म्य बनाये हुए हैं।

—श्रीअरविन्द

एक जीवन से दूसरे जीवन का यात्री

चैत्य सत्ता तथा पुनर्जन्म

मृत्यु के समय चैत्य सत्ता का चुनाव अगले व्यक्तित्व के निर्माण को निष्पन्न नहीं करता, बल्कि निर्धारित करता है। जब यह चैत्य जगत् में प्रवेश करती है, यह अपने अनुभव के सार को आत्मसात् करने लगती है और उस आत्मसात्करण द्वारा तथा उस पूर्व निर्धारण के अनुसार भावी चैत्य-व्यक्तित्व का गठन होता है। जब यह आत्मसात्करण पूरा हो जाता है तब यह नये जन्म के लिए तैयार होती है—लेकिन कम विकसित लोग यह सारी क्रिया स्वयं नहीं करते, उच्चतर लोक की सत्ताओं और शक्तियों को सौंपा गया काम है यह। और जन्म ले लेने पर इसे यह विश्वास नहीं होता कि भौतिक जगत् की शक्तियाँ इसके मनचाहे रास्ते में आड़े नहीं आयेंगी—सम्भव है कि इसका नया माध्यम इस प्रयोजन के लिए काफ़ी सशक्त न हो; क्योंकि यहाँ इसकी अपनी ऊर्जाओं और वैश्व शक्तियों का परस्पर प्रभाव और प्रवाह रहता है। निराशा, भटकन या आंशिक परिपूर्ति—बहुत कुछ घट सकता है। यह सब बँधी-बँधायी यान्त्रिक क्रिया नहीं है, यह तो जटिल और दुरूह शक्तियों का परिणाम है। फिर भी, इतना जोड़ा जा सकता है कि एक विकसित चैत्य पुरुष इस सारे संक्रमण में ज़्यादा सचेतन होता है और इस सारी क्रिया का अधिकांश स्वयं कर लेता है। अवधि निर्भर करती है व्यक्ति-व्यक्ति के विकास और उसके गतिछन्द पर—कुछ लोग लगभग तुरन्त जन्म ले लेते हैं, और कुछ थोड़े समय के अन्तराल से; कुछ को शताब्दियाँ लग सकती हैं। यहाँ भी, यदि चैत्य पुरुष यथेष्ट विकसित हो तो यह अपने गतिछन्द और अपने अन्तराल को चुनने में स्वतन्त्र होता है।

पुनर्जन्म तथा कर्म

प्रचलित सिद्धान्त बहुत यान्त्रिक हैं—पुण्य और पाप और अगले जीवन में उनके फल की धारणा के बारे में भी यही कहा जा सकता है। विगत जन्मों में किये गये प्रयत्नों के परिणाम अवश्य होते हैं, लेकिन उस बचकाने सिद्धान्त के आधार पर नहीं। उस दकियानूसी सिद्धान्त के अनुसार किसी भले आदमी के इस जन्म के दुःख-कष्ट प्रमाणित करते हैं कि वह पिछले

जीवन में बहुत बड़ा दुष्ट और बदमाश था; कोई दुष्टात्मा यदि इस जीवन में फलता-फूलता है तो वह इस बात का प्रमाण है कि पिछले पार्थिव जीवन में वह देवसदृश था जिसने अपने सद्‌गुणों और सत्कर्मों की फसल बोयी थी जिससे अब वह सद्‌भाग्य की भरी-पूरी फसल काट रहा है—कितना काटा-तराशा हुआ, पर सच्चाई से दूर! क्योंकि जन्म का अभिप्राय ही है अनुभव द्वारा बढ़ना, अतः, विगत कर्मों के जो भी परिणाम सामने आते हैं वे व्यक्ति के सीखने और प्रगति करने के लिए आते हैं, भूतकाल में हुई कक्षा के अच्छे बच्चों के लिए मिठाई और दुष्टों की पिटाई की तरह नहीं। अच्छाई और बुराई के परिणाम हमें सौभाग्य और दुर्भाग्य के रूप में नहीं मिलते, बल्कि इस रूप में मिलते हैं कि अच्छाई हमें परा प्रकृति की ओर ले जाती है जो दुःख-कष्ट से अतीत होती है और बुराई अपरा प्रकृति की ओर जो सदा दुःख और विपत्ति के घेरे में घूमती रहती है।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ५३२-३३

दुष्चक्र में से निकलना पूरी तरह सम्भव है

इस तरह घटित होता है : चैत्य सत्ता एक जीवन से दूसरे जीवन में जाती है, लेकिन ऐसे भी मामले सामने आते हैं जिनमें चैत्य सत्ता किसी विशेष कार्य को करने के लिए, कोई विशेष अनुभूति पाने, कोई ख़ास चीज़ सीखने, किसी ख़ास अनुभूति के ज़रिये किसी चीज़ को विकसित करने के लिए जन्म लेती है। इसलिए उसके उस जीवन में जहाँ उसे अनुभूति प्राप्त करनी है ऐसा हो सकता है (वैसे एक से अधिक कारण हो सकते हैं) कि अन्तरात्मा ठीक उसी जगह न उतरे जहाँ उसे उतरना चाहिये था, थोड़ी-सी हेर-फेर या विपरीत परिस्थितियाँ आड़े आ सकती हैं—ऐसा कभी-कभी होता है—और तब बच्चा जन्मते ही मृत घोषित कर दिया जाता है क्योंकि अन्तरात्मा फ़ौरन उस शरीर को छोड़ कर चली गयी है। लेकिन दूसरे कई मामलों में, अन्तरात्मा अपने-आपको असम्भवता के घेरे में फँसा पाती है, जो वह करना चाहती थी उससे कोसों दूर छिटका पाती है, क्योंकि दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियाँ उसे घेर लेती हैं। केवल वस्तुपरक दृष्टि से ही दुर्भाग्यपूर्ण नहीं बल्कि उसके अपने विकास के लिए भी दुर्भाग्यपूर्ण, और तब अपने अनुभव को उसे एक बार फिर दोहराना पड़ता है और वह भी

पहले से कहीं अधिक कठिनाइयों के बीच।

और अगर, ऐसा हो सकता है कि उसका दूसरा प्रयास भी विफल हो जाये, अगर परिस्थितियाँ अन्तरात्मा के लिए और भी अधिक जटिलताएँ पैदा कर दें... उदाहरण के लिए, अगर अन्तरात्मा ऐसे शरीर में जन्म ले ले जिसमें न पर्याप्त इच्छा हो या फिर जिसमें विचार की विकृति हो, एक तरह का अहंकार हो... जो बहुत ही कठोर बन गया हो, तो कभी-कभी उस शरीर का अन्त आत्महत्या में होता है। यह भयंकर है। मैंने ऐसा कई बार देखा है, यह चीज़ एक ऐसे भयानक कर्म को पैदा कर देती है कि जन्म-जन्मान्तरों तक व्यक्ति इस दुष्चक्र से निकल ही नहीं पाता, जब तक कि अन्तरात्मा इस पर विजय न पा ले और जो वह करना चाहती है उसे करने में सफल न हो जाये। और जब तक ऐसा नहीं होता तब तक जब-जब व्यक्ति जन्म लेता है उसे अपने पिछले जन्म की अपेक्षा कहीं अधिक जटिल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है और अधिक कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। और जो लोग इस तथ्य को जानते हैं वे कहते हैं, "तुम इस दुष्चक्र से निकल नहीं सकते!" वास्तव में जीवन से भाग जाने की इच्छा ही व्यक्ति को आत्महत्या जैसी मूर्खताभरी चीज़ों की ओर धकेलती है जो कठिनाई का अम्बार खड़ा कर देती हैं। ऐसे क्षण आते हैं—मुहूर्त और परिस्थितियाँ—जब तुम्हारी सहायता के लिए कोई नहीं होता, और तब चीज़ें इतनी... इतनी विकराल हो जाती हैं, परिस्थितियाँ इतनी बीभत्स हो जाती हैं... कि भगवान् ही बचाये!

लेकिन अगर अन्तरात्मा **एक बार** पुकार उठे, 'कृपा' के साथ उसका **एक बार** सम्पर्क सध जाये तब अगले जन्म में तुम ऐसी परिस्थितियों में रख दिये जाते हो जहाँ एक ही झटके में **सब कुछ** पोंछ दिया जा सकता है। और पृथ्वी के इस वर्तमान काल में, तुमलोग कल्पना नहीं कर पाओगे कि मैं कितनी संख्या में ऐसे लोगों से मिली हूँ—यानी, ऐसी अनगिनत आत्माओं से मेरी भेंट हुई है जो इतनी तीव्रता से इस सम्भावना की ओर बढ़ आयी हैं—उन सबने अपने-आपको मेरे पथ पर ला खड़ा कर दिया है।

उस मुहूर्त में, कभी-कभी बहुत अधिक साहस की आवश्यकता होती है, कभी-कभी बहुत सहनशीलता की आवश्यकता होती है, कभी-कभी एक सच्चा प्रेम काफ़ी होता है, कभी-कभी, ओह! केवल अगर श्रद्धा होती,

एकमात्र चीज़, यह एकमात्र छोटी-सी चीज़ पर्याप्त है, और... सभी बुरे कर्मों का एक ही झटके में सफ़ाया किया जा सकता है। मैंने कई बार ऐसा किया है; हाँ, ऐसे भी काल आये हैं जब मैं असफल रही। लेकिन प्रायः मैं उन्हें दुष्चक्र में से निकालने में सफल रही। लेकिन फिर, व्यक्ति को ज़रूरत होती है एक महान्, संयमी साहस या ऐसे सामर्थ्य की कि वह **अन्त तक जा सके**। प्रतिरोध (विशेषकर, जब किसी ने पहले आत्महत्या की हो), तो इस मूर्खता को दोबारा करने की प्रवृत्ति का प्रतिरोध करना बड़ा कठिन हो जाता है। नहीं तो बस जब-जब दुःख-दर्द टूट पड़े तो उसे सहने की बजाय, डटे रहने की बजाय, दुनिया से भाग जाने, चले जाने की यह आदत पीछा नहीं छोड़ती।

केवल यही हो, 'कृपा' में दृढ़ विश्वास, या 'कृपा' के बारे में अभिज्ञता, या पुकार में गहरी तीव्रता, या फिर स्वाभाविक रूप से एक प्रत्युत्तर हो—कृपा के प्रति प्रत्युत्तर और तब यह चीज़ तुम्हें उद्‌घाटित कर देती है, दुष्चक्र को तोड़ देती है—यही है इस महिमामय 'कृपा' के अद्‌भुत प्रेम के प्रति व्यक्ति का प्रत्युत्तर।

प्रबल इच्छा-शक्ति के बिना यह करना मुश्किल होता है; और सबसे बढ़ कर, सबसे बढ़ कर व्यक्ति के अन्दर होनी चाहिये आत्महत्या की घोर प्रवृत्ति का प्रतिरोध करने की क्षमता, जो सारे जीवन व्यक्ति को इतना तंग करती रहती है कि अन्त में वह उसी ओर चला जाता है—क्योंकि उस झुकाव की शक्ति बढ़ती ही चली जाती है। हर एक हार उस प्रवृत्ति को अधिक शक्ति प्रदान कर देती है। लेकिन एक छोटी-सी विजय उसे एकदम ग़ायब कर सकती है।

ओह, सबसे भयंकर बात तब होती है जब व्यक्ति के अन्दर साहस नहीं होता, बल नहीं होता, वह चीज़ उस पर पूरी तरह से हावी हो जाती है! कितनी ही बार लोग मुझसे आकर कहते हैं, 'मैं मर जाना चाहता हूँ, मैं भाग जाना चाहता हूँ, मैं मर जाना चाहता हूँ।' मैं उनसे कहती हूँ, 'अपने प्रति मरो! कोई तुमसे तुम्हारे अहंकार को ज़िन्दा रखने के लिए नहीं कह रहा! अपने प्रति मरो, चूँकि तुम मरना चाहते हो! वह साहस रखो, अपने अहंकार के प्रति मरने का सच्चा साहस।'

लेकिन, चूँकि यह कर्म है, इसलिए व्यक्ति को अपने-आप ही कुछ **करना**

होता है। कर्म ही अहंकार को रचता है; अहंकार को **कुछ करना चाहिये**, सब कुछ उसके लिए नहीं किया जा सकता। तो बात **यह** है; अहंकार की क्रियाओं का परिणाम है कर्म, और केवल तभी जब अहंकार अपनी जगह छोड़ देता है कि कर्म का विलयन होता है—और व्यक्ति उस दुष्चक्र से बाहर निकल सकता है। तुम अपने अहंकार की मदद कर सकते हो, उसमें बल भर सकते हो, उसे सही राह पर लाने के लिए उसमें साहस का सञ्चार कर सकते हो, लेकिन फिर अहंकार को भी तुम्हारी बात सुननी पड़ेगी और अपना सही उपयोग करना सीखना होगा।

२२ नवम्बर १९५८ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

जन्म का चुनाव

क्या ऐसा हो सकता है कि चैत्य पुरुष ठीक उस स्थान पर न नीचे आये जहाँ वह जन्म लेना चाहता था?

यदि कोई चैत्य पुरुष अपने चैत्य जगत् से पृथ्वी पर कोई ज्योति देखे तो वह यह जाने बिना कि वह ज्योति ठीक-ठीक कहाँ पर है, उस ओर नीचे दौड़ा आ सकता है। सब कुछ सम्भव है। परन्तु चैत्य पुरुष यदि बहुत सचेतन, पर्याप्त रूप से सचेतन हो तो वह अभीप्सा की ज्योति को यथार्थ स्थान में खोजता है, संस्कार और शिक्षण के कारण वह उसे वहाँ पा भी लेता है। ऐसी बात उससे कहीं अधिक बार घटती है जितना कि हम मानते हैं, विशेषतः कुछ-कुछ शिक्षित समाजों में। जो बुद्धिमती स्त्री कुछ कलात्मक या दार्शनिक संस्कार से युक्त है तथा जिसमें सचेतन व्यक्तित्व का गठन आरम्भ हो गया है वह यह अभीप्सा कर सकती है कि जिस बच्चे को वह जन्म देने जा रही है वह उसके विचारों के अनुसार या जो कुछ उसने पढ़ा है उसके अनुसार यथासम्भव सर्वोत्तम बच्चा हो। अतएव, स्थान का पता लगाना इतना अधिक जटिल नहीं है। जन्म लेने वाले चैत्य पुरुषों की संख्या सदा ही काफ़ी होती है, तो यदि प्रत्येक बार असामान्य अवस्थाएँ प्राप्त करनी हों तो यह बात कठिन हो जायेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १९८

चैत्य सत्ता परिस्थितियाँ जुटा देती है

यदि तुम्हारे अन्दर यथेष्ट जाग्रत् चैत्य पुरुष है और तुम्हारे ऊपर निगरानी रख सकता है, तुम्हारा मार्ग तैयार कर सकता है तो वह तुम्हारी ओर उन चीज़ों को खींच सकता है जो तुम्हें सहायता दे सकें, लोगों को, पुस्तकों को, परिस्थितियों को खींच सकता है, सब प्रकार के छोटे-छोटे संयोगों को खींच सकता है जो तुम्हारे पास इस तरह आते हैं मानों कोई हितैषी संकल्प-शक्ति उन्हें ले आयी हो और तुम्हें निर्णय लेने के लिए एक संकेत, एक सहायता, एक अवलम्ब प्रदान कर रही हो तथा तुम्हें सही दिशा में मोड़ रही हो...।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ३११

पुनर्जन्म, सीख तथा विकास

चैत्य पुरुष किसी निश्चित लक्ष्य से, विशेष प्रकार के अनुभवों में से गुज़रने के लिए, सीखने और प्रगति करने के लिए आता है। अगर तुम उसका काम पूरा होने से पहले शरीर छोड़ दो, तो उसे फिर से वही काम और भी ज़्यादा कठिन परिस्थितियों में पूरा करने के लिए वापस आना पड़ेगा। तो एक जीवन में तुमने जिन-जिन चीज़ों से बचने की कोशिश की है उन सबको अगले जीवन में फिर से पाओगे, और तब वे ज़्यादा कठिन होंगी। और इस तरह छोड़े बिना भी, अगर तुम्हें जीवन में कुछ कठिनाइयों को पार करना है, जैसा कि सामान्यतया कहते हैं कि तुम्हें कोई परीक्षा पास करनी है, समझे; और, अगर तुम इस बार पास न कर सको या उधर से मुँह मोड़ लो, या उसे पास करने की बजाय वहाँ से चले जाओ तो तुम्हें उसे फिर से पास करना होगा, और तब वह पहली बार की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन होगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. २५-२६

लेकिन चैत्य संकल्प और चैत्य विकास मनुष्यों की न्याय, पुरस्कार और दण्ड की साधारण धारणाओं से एकदम बाहर है। ऐसे धर्म हैं, ऐसे दर्शन हैं जो तुम्हें नाना प्रकार की कहानियाँ सुनाते हैं, जो शुद्ध रूप से मानव न्याय की धारणा को अदृश्य जगत् पर लागू करती हैं, और ये बिलकुल

मूर्खतापूर्ण हैं। क्योंकि चीज़ ऐसी बिलकुल नहीं है; पुरस्कार और दण्ड की धारणा, जैसा कि मनुष्य समझता है, एकदम वाहियात है। यह आन्तरिक वास्तविकताओं पर लागू नहीं होती, बिलकुल नहीं होती। एक बार तुम आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश पा लो तो ये सब चीज़ें वास्तव में मूर्खता बन जाती हैं। क्योंकि चीज़ें ऐसी बिलकुल नहीं हैं।

बहुत-से लोग मुझसे आकर कहते हैं: "मैंने आख़िर अपने पिछले जीवन में क्या किया था जो अब इतनी कठिन अवस्था में पड़ा हूँ, इतनी मुसीबतें आ रही हैं मुझ पर?" और बहुधा मुझे यह कहना पड़ता है: "तुम देख नहीं सकते, यह तुम्हारे लिए आशीर्वाद है, भगवान् की कृपा है! और शायद पिछले जन्म में तुमने इसकी माँग की थी ताकि तुम अधिक प्रगति कर सको...।" ये विचार बहुत प्रचलित हैं: "ओह, मैं बीमार हूँ। हाय! मेरा शरीर बुरी अवस्था में है, मैंने क्या किया है? मैंने पिछले जन्म में कौन-सा अपराध किया था कि इस...।" ये सब बचकानी बातें हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २३९-४०

चैत्य सत्ता के लिए सम्भावना

जब चैत्य पुरुष पूरी तरह विकसित हो जाता है, जब उसे अपने विकास के लिए फिर से धरती पर आने की ज़रूरत नहीं रहती, जब वह पूरी तरह स्वतन्त्र होता है तो उसके सामने कई विकल्प होते हैं, अगर उसे लगे कि उसका काम कहीं और है, या अगर वह शुद्ध चैत्य चेतना में, जन्म लिये बिना रहना अधिक पसन्द करे तो वह धरती पर वापस ही न लौटे; या वह जब चाहे, जैसे चाहे, जहाँ चाहे, पूर्ण सचेतन रूप में जन्म ले। और फिर ऐसे हैं जो वैश्व क्रम की शक्तियों और 'अधिमानस' की या कहीं और की सत्ताओं के साथ एक हो जाते हैं, जो हमेशा धरती के वातावरण में ही रहते हैं, और कार्य के लिए एक के बाद एक जन्म लेते ही रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि जिस क्षण चैत्य पुरुष पूर्णतया निर्मित हो जाता है और बिलकुल स्वतन्त्र होता है—जब वह पूर्णतया निर्मित हो तो वह पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाता है—तो वह जो करना चाहे कर सकता है, यह इस पर निर्भर करता है कि वह क्या चुनता है; इसलिए तुम यह नहीं कह सकते: "वह ऐसा होगा, वह वैसा होगा", वह ठीक वही करता

है जो वह करना चाहे और वह शरीर की मृत्यु के समय यह घोषणा भी कर सकता है (ऐसा हो चुका है) कि उसका अगला जन्म कैसा होगा, वह क्या करेगा, वह तभी चुन सकता है कि वह क्या करेगा। लेकिन इस स्थिति से पहले, जो बार-बार नहीं आती—वह पूरी तरह चैत्य के विकास की अवस्था और सत्ता की समग्र चेतना की सँजोयी हुई आशा पर निर्भर करता है—मानसिक, प्राणिक और भौतिक चेतना भी है जो चैत्य चेतना के साथ युक्त होती है; तो उस समय, मृत्यु की घड़ी में, शरीर-त्याग के क्षण, वह एक आशा, एक अभीप्सा, एक संकल्प सँजोती है, और साधारणतः यही अगले जीवन का निश्चय करती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ९६-९७

आत्मा के प्रमाण तथा मृत्यु के बाद का जीवन

प्रमाण... लोग चाहते हैं एक वैज्ञानिक प्रमाण कि आत्मा का अस्तित्व है। लेकिन, पहली बात तो यह है कि क्या वे सचमुच आत्मा या अन्तरात्मा के बारे में पूछ रहे हैं? समझ रहे हो न, इन चीज़ों के बारे में लोग बड़ी दुविधा में रहते हैं : उनके लिए आत्मा बस कोई चीज़ है। क्या वे सचमुच उस अन्तरात्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करना चाहते हैं जो शाश्वत है, अमर है या फिर वे जीवन के बाद भी अस्तित्व के बने रहने की बात करते हैं? ये दोनों अलग-अलग चीज़ें हैं। मृत्यु के बाद भी जीवन बना रहता है यह बात वैज्ञानिक तरीक़े से प्रमाणित की जा चुकी है : कई ऐसे मामले उजागर होते रहते हैं जिनमें व्यक्ति वर्तमान जीवन में अपने पिछले जन्म की घटनाओं को लिये चलता है। एक पिता की कहानी है जिसकी मृत्यु हो गयी थी और पड़ोसी का बच्चा उस मृत पिता के बारे में अभूतपूर्व चीज़ें और ब्योरे सुनाया करता था। और जब बच्चा पाँच-छह साल का हुआ तो वह अपने पिछले जन्म को जीने की कोशिश करने लगा; वह कहता, "मेरे बच्चे उस घर में मेरा इन्तज़ार कर रहे हैं, मुझे वहाँ जाकर उनकी देखभाल करनी चाहिये!" वह ख़ुद एक बच्चा था, फिर भी कहता था, "मेरे बच्चे वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" और वही वह घर था जहाँ उसकी मृत्यु हुई थी। वह कई ऐसी बातें बताया करता था जो केवल वह मृत पिता ही जानता था : वह कहा करता था, "लेकिन मैंने वह चीज़ यहाँ

रखी थी, वहाँ कैसे पहुँच गयी?" इस तरह की कई सारी बातें वह किया करता था। यह काफ़ी हाल ही का क़िस्सा है। ऐसे कम-से-कम चार-पाँच मामले सामने आये हैं जो मृत्यु के बाद के जीवन की पुष्टि करते हैं। लेकिन वह क्या चीज़ होती है जो मृत्यु के बाद भी जीती रहती है? निस्सन्देह, उस बच्चे के मामले में, वह आत्मा नहीं थी, उसका आत्मा के साथ कोई वास्ता नहीं था; ये प्राण की (मनोगत प्राण) सत्ताएँ होती हैं जो बची रहती हैं और, किन्हीं विशेष परिस्थितियों में तुरन्त दोबारा जन्म ले लेती हैं। यानी, उनका पूर्वजन्म जब "काफ़ी ताज़ा" ही रहता है। उस बच्चे के मामले में वैज्ञानिक दृष्टि से कोई विवाद सम्भव नहीं, क्योंकि वे यह नहीं कह सकते कि "वह पागल है," या "यह उसका मतिभ्रम है"—वह एक बच्चा है और वह "अपने बच्चों" की बातें कर रहा है। इस तरह के विश्वासोत्पादक और भी क़िस्से हुए हैं। लेकिन क्या वैज्ञानिक बस यही जानना चाहते हैं? या वे सचमुच इसकी खोज में हैं कि क्या मनुष्य में आत्मा या अन्तरात्मा होती है और क्या वह अमर है, और... सचमुच, वे कुछ नहीं जानते। ऐसे प्रश्न अज्ञानी लोग ही पूछते हैं। उनसे कहना चाहिये, "क्षमा करना! ऐसे प्रश्न पूछने से पहले आपको ख़ुद समस्या का अध्ययन करना चाहिये।"

महोदय 'फ़ोर्ड' की एक कहानी थी, उन्होंने श्रीअरविन्द और मुझे लिखा था कि वे यहाँ हमसे उस प्रश्न का उत्तर जानने आयेंगे जो उन्हें बेहद सताया करता है: "मृत्यु के बाद क्या होता है?" और उन्होंने कहा कि जो भी उन्हें इसका उत्तर दे पायेगा उसे वे अपनी सारी जायदाद देने को तैयार हैं। किसी ने उनसे कहा, "हाँ, श्रीअरविन्द आपको उत्तर दे सकते हैं।" तो, फ़ोर्ड ने ख़बर भिजवायी कि वे यहाँ आने की तैयारी कर रहे हैं ताकि हमसे वह प्रश्न पूछ सकें। लेकिन, दुर्भाग्यवश, उनकी मृत्यु हो गयी!

३ नवम्बर १९६६ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

अन्तरात्मा की स्मृतियाँ

एक होती है अन्तरात्मा... जो सहज रूप में... हम उसे परम 'चेतना' का, परम 'वास्तविकता' का, परम 'सत्य' का—तुम जो चाहो नाम दे लो—निर्गत अंश कह सकते हैं। मेरे लिए तो ये सभी समान हैं। लेकिन,

बहरहाल, अन्तरात्मा 'तत्' का निर्गत अंश है। शरीर में वह चैत्य सत्ता का जामा पहन लेती है। चैत्य सत्ता वह है जो सभी जन्मों में प्रगति करते-करते क्रमशः विकसित होती रहती है। तो क्या तुम अन्तरात्मा की बात कर रहे हो या चैत्य सत्ता के बारे में पूछ रहे हो (जो पहले भ्रूण-अवस्था में होती है और अन्त में एक सचेतन, पूरी तरह से स्वतन्त्र सत्ता बन जाती है), या फिर तुम बस मृत्यु के बाद की किसी व्यक्तिगत चेतना के जीवन के बारे में पूछ रहे हो? क्योंकि यह एकदम अलग ही चीज़ है। इसके कई प्रमाण हैं; लेकिन ऐसे मामले में, वह कुछ निचले दरजे की एक प्राणिक चेतना होती है, और हो सकता है कि किन्हीं परिस्थितियों के संयोगवश वह व्यक्तिगत चेतना फ़ौरन किसी दूसरे शरीर में आ जाये (ऐसा भी हुआ है कि पिता ने अपने ही परिवार में दोबारा जन्म ले लिया), और वे अपने पिछले जन्म की स्मृति के साथ आये। अन्यथा, जिन लोगों ने इस विषय का अध्ययन किया है उनके अनुसार, केवल चैत्य सत्ता ही, अपने गठन की प्रक्रिया में, अपने पूर्वजन्मों की स्मृतियाँ बनाये रखती है। लेकिन वह उन्हीं भौतिक, विशुद्ध रूप से **केवल** उन्हीं भौतिक क्षणों की स्मृतियाँ सँजोये रखती है **जिन क्षणों में उसने व्यक्ति के जीवन में हिस्सा लिया था**। इसलिए, वे सब कहानियाँ जो तुम्हें सुनायी जाती हैं (और जो मनगढ़न्त होती हैं), तुम्हारे अन्दर बस इस तरह की स्मृतियाँ होती हैं *(श्रीमाँ अपनी उँगली को हवा में इधर-उधर छूती हैं)* जिनमें बहुत ब्योरे नहीं होते, जो कभी पूर्ण होती हैं, कभी नहीं, लेकिन जो उस **क्षण** की आंशिक स्मृतियाँ हैं जिसमें चैत्य भौतिक रूप से अभिव्यक्त हुआ था। बहुत-से लोगों में इस तरह की स्मृति होती है, लेकिन वे यह नहीं जानते कि यह है क्या। बहुधा वे इसे "स्वप्न" या "कल्पनाएँ" मान बैठते हैं। जो जानते हैं वे (यानी, जो इस बात से सचेतन हैं कि उनकी भौतिक चेतना में क्या घटित हो रहा है) देख सकते हैं कि ये स्मृतियाँ हैं।

इस तरह की स्मृतियाँ, जो मेरे सामने आयी हैं, असंख्य हैं। लेकिन इनमें वही समान लक्षण नहीं होते जो उच्चतर चेतना की स्मृतियों में होते हैं (तब वह "स्मृति" भी नहीं रहती : वे होते हैं ऐसे अन्तर्दर्शन जिन्हें उच्चतर सत्ताएँ जीवन में प्राप्त करती हैं, लेकिन यह अलग ही चीज़ है)। मैं जिन स्मृतियों की बात कर रही हूँ वे चैत्य सत्ता की स्मृतियाँ होती हैं, उनके

अलग गुण होते हैं : कह सकते हैं, व्यक्तिगत गुण, मेरा मतलब है कि ऐसी स्मृतियों में इस तरह का भाव होता है कि स्वयं **व्यक्ति** किन्हीं घटनाओं को याद कर रहा है। जब कि दूसरी में वे अन्तर्दर्शन होते हैं जो ऊपर से आते हैं और ये होती हैं "क्रियाशील चेतना" की यादें। और चैत्य सत्ता की यादें मानसिक रूप नहीं लेतीं, यानी, जब पिछले जन्म की कोई बात तुम्हारी स्मृति में खुद जाती है तो ऐसे ब्योरों का ध्यान नहीं रहता कि तुम उस समय कौन-सी पोशाक पहने थे या तुम्हारा परिवेश कैसा था, तुम्हें इन बातों की याद नहीं रहती। तुम्हें बस वही याद रहता है जो घटा था और विशेषकर चेतना तथा भावों और आन्तरिक क्रियाओं के दृष्टिकोण से क्या-क्या हुआ था।

३ नवम्बर १९६६ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

चैत्य सत्ता तथा मृत्यु

क्या मृत्यु का समय तथा तरीक़ा अन्तरात्मा के द्वारा चुना जाता है? क्या बृहद् सामूहिक मानव-विनाश, जैसे बमबारी, बाढ़, भूकम्प इत्यादि में मारे जाने वाली सभी आत्माओं ने एक साथ मरने का चुनाव किया था?

मनुष्यों के अधिकांश भाग की सामूहिक नियति होती है। उनके लिए प्रश्न ही नहीं उठता। जिसके अन्दर व्यक्तिभावापन्न चैत्य सत्ता होती है वह सामूहिक विध्वंसों के बीच भी बचा रह सकता है—अगर उसकी आत्मा ने वह चुनाव किया हो।

मृत्यु के बाद, एक बार अपनी भौतिक, प्राणिक तथा मानसिक सत्ताओं से अलग हो जाने के बाद अन्तरात्मा अपनी सत्ता तथा अस्तित्व के बारे में सचेतन कैसे हो सकती है भला?

अन्तरात्मा 'परम प्रभु' की एक चिनगारी है, मेरी समझ में नहीं आता कि सत्ता के बारे में सचेतन होने के लिए 'प्रभु' को किसी शरीर की आवश्यकता क्यों हो भला?

यह कोई नयी बात नहीं है, लेकिन इस समझ से चेतना का विस्तार होता है। और दरअसल, ये सभी प्रश्न हाल ही में वातावरण में प्रवेश कर रहे हैं, और इसका पहला प्रभाव यह हो रहा है कि मनुष्य मृत्यु के बारे में कुछ नहीं जानता—वह यह नहीं जानता कि मृत्यु है क्या, यह नहीं जानता कि होता क्या है, उसने हर तरह की अटकलें लगायी हैं, लेकिन निश्चयात्मक रूप से वह कुछ नहीं जानता। और बात की गहराई में उतर कर, बहुत गहराई में जाकर अब मैं इस परिणाम पर पहुँच गयी हूँ कि मृत्यु-जैसी कोई चीज़ है ही नहीं।

बस एक आभास होता है, ऐसा आभास जो सीमित दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। क्योंकि चेतना के स्पन्दन में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता... क्योंकि मृत्यु सचमुच अवस्थाओं का भेद है। मानव अपने अज्ञान में इस बात को बिलकुल नहीं समझ पाता इसलिए मृत्यु को इतना अधिक महत्त्व देता है। अगर कोई इसके पीछे के स्पन्दनों, सच्ची चीज़ को समझ सके तो वह देखेगा और यह कह पायेगा कि जन्म और मृत्यु में अधिक भेद नहीं है, क्योंकि ये वास्तव में एक ही सिक्के के दो पहलू हैं...! फिर भी, वर्तमान काल में मनुष्य के लिए सच्चे रूप में इस बात को समझना इतना आसान नहीं है।...

७ मार्च १९६७ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

मृत्यु के बाद क्या होता है

मैंने तुमलोगों से बहुत बार कहा है, जितनी बार दोहराऊँ कम है, कि हम एक ही टुकड़े से बने हुए नहीं हैं। हमारे अन्दर सत्ता की बहुत सारी अवस्थाएँ होती हैं, और हर एक अवस्था का अपना जीवन होता है। जब तक तुम्हारा शरीर रहता है, वे सभी अवस्थाएँ एक ही शरीर में इकट्ठी रहती हैं और एक ही शरीर के द्वारा क्रिया करती हैं; यही चीज़ तुम्हें एक व्यक्ति का, एक ही सत्ता का आभास देती है। लेकिन, वास्तव में उस एक शरीर में कई सारी सत्ताएँ होती हैं, और विभिन्न स्तरों पर वे भिन्न-भिन्न एकाग्रताओं के साथ कार्य करती हैं; जैसे तुम्हारे अन्दर एक भौतिक सत्ता है, एक प्राणिक सत्ता है, एक मानसिक सत्ता है, एक चैत्य सत्ता है और जानते हो, इन सभी के बीच में बहुत सारी सम्भव सत्ताएँ हैं...। तो जब

तुम अपना शरीर छोड़ते हो तो वे सभी सत्ताएँ छितर जाती हैं। अगर तुम बहुत ही विकसित योगी हो और अपनी मुख्य सत्ता को भागवत केन्द्र के चारों ओर एक करने में समर्थ हो जाओ तो अन्य सभी छोटे-छोटे केन्द्र, छोटी-छोटी सत्ताएँ मृत्यु के बाद तितर-बितर नहीं होंगी। अगर तुम इकट्ठा करने में समर्थ न हो सको तो मृत्यु के समय सब कुछ बिखर जायेगा: प्रत्येक सत्ता अपने निजी क्षेत्र में चली जायेगी। उदाहरण के लिए, तुम्हारी प्राणिक सत्ता के साथ-साथ तुम्हारी विभिन्न कामनाएँ अलग-अलग हो जायेंगी और उनमें से हर एक, अपनी कामनाओं की पूर्ति करने के लिए एकदम से स्वतन्त्र रूप से इधर से उधर भागती-दौड़ती फिरेगी, क्योंकि उन्हें एक साथ पकड़े रखने के लिए कोई भौतिक सत्ता नहीं होगी। जब कि, अगर तुमने अपनी चेतना को चैत्य चेतना के साथ जोड़ दिया हो तो मरने के बाद तुम अपनी चैत्य सत्ता के प्रति सचेतन रहोगे और चैत्य सत्ता चैत्य जगत् में लौट जायेगी जो आनन्द, हर्ष, शान्ति, अचञ्चलता तथा बढ़ते हुए ज्ञान का जगत् है... अतः, इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि अगर तुम अपनी चेतना को सुरक्षित बनाये रखना चाहते हो तो ज़्यादा अच्छा होगा कि उसे अपनी सत्ता के उस भाग पर केन्द्रित रखो जो शाश्वत है, अन्यथा वह हवा के झोंके में लौ के समान बुझ जायेगी। और यह तो अच्छी बात इसलिए है कि अगर अन्यथा हो तो मनुष्यों से अधिक ऊँचे ऐसे देवता हो सकते हैं जो नरक और स्वर्ग की रचना कर देंगे, जिस तरह वे अपनी भौतिक कल्पना में किया करते हैं, और फिर उसमें तुम्हें बन्द कर देंगे!

७ सितम्बर १९६८ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

अगर तुममें से हर एक अपनी चैत्य सत्ता को पा ले और उसके साथ एक हो जाये तो सारी समस्याओं का हल हो जायेगा।

मनुष्य में चैत्य सत्ता 'भगवान्' का प्रतिनिधित्व करती है। यह एकदम सच है, जानते हो: भगवान् कोई दूर की चीज़ नहीं हैं, हमारी पहुँच के परे नहीं हैं; भगवान् तुम्हारे अन्दर हैं, लेकिन तुम इस तथ्य के बारे में पूरी तरह सचेतन नहीं होते।

८ फ़रवरी १९७३ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

यही मूल उद्‌गम है और मुख्य सूत्र है,
मस्तक के ऊर्ध्व में यह चरम नीरवता है, अन्तर में एक दिव्य वाणी है,
हृदय में एक जीवन्त छवि आसीन है,
एक असीम विस्तार और एक अथाह बिन्दु है,
चित्ताकाश में घटित इन सब गूढ़ दृश्यों का यही सत्य है,
यही वह सत्‌-तत्त्व है जिसकी ओर हमारे प्रयास गतिशील हैं,
हमारे जीवनों का यही गुह्य भव्यार्थ है।
प्रभु के मधु-छत्तों का यही मधु-कोष है,
अज्ञान के एक काले लबादे में प्रज्वलित एक देव आभामण्डल है,
प्रभु की ज्वाला की यह कान्तिमय गरिमा हमारी है,
संसार के सुख का हमारा सुनहरा झरना यही है,
मृत्यु का दुशाला ओढ़े हुए एक अमरत्व है,
हमारे अजात देवत्व का यह भावी रूप है।
अन्तर की गहनताओं में यह हमारी नियति की हमारे लिए रक्षा करता है
जहाँ नश्वर तत्त्वों के अन्तर में यह अविनाशी बीजाणु सोया है।
'सावित्री', पृ. ४९ *—श्रीअरविन्द*

अस्थायी चीज़ों में विद्यमान शाश्वत बीज

भगवान् का प्रतिनिधि

चैत्य पुरुष मनुष्य में भगवान् का प्रतिनिधि है। तो यह बात है, समझे—भगवान् कोई दूर की चीज़ या पहुँच के बाहर नहीं हैं। भगवान् तुम्हारे अन्दर हैं, परन्तु तुम उनके बारे में पूरी तरह सचेतन नहीं हो। बल्कि... अभी वे एक 'उपस्थिति' की बजाय प्रभाव के रूप में काम कर रहे हैं। लेकिन होनी चाहिये एक सचेतन 'उपस्थिति', तुम्हें हर क्षण अपने-आपसे यह पूछ सकना चाहिये, क्या है... कैसे... भगवान् इसे किस तरह देखते हैं। यह ऐसा है : पहले भगवान् कैसे देखते हैं, और फिर भगवान् कैसे चाहते हैं, और फिर भगवान् कैसे कार्य करते हैं। और यह अगम्य क्षेत्रों में जाकर नहीं करना है, ठीक यहीं करना है। केवल, अभी के लिए, समस्त पुरानी आदतें और व्यापक निश्चेतना एक प्रकार का ढक्कन रख देती हैं जो हमें देखने और अनुभव करने से रोकता है। तुम्हें... तुम्हें उसे उठाना, तुम्हें उसे ऊपर उठाना पड़ेगा।

वस्तुतः, तुम्हें सचेतन यन्त्र बनना पड़ेगा... सचेतन... भगवान् के बारे में सचेतन।

साधारणतः इसमें पूरा जीवन लग जाता है, या कभी-कभी, कुछ लोगों को कई जीवन लगते हैं। यहाँ, वर्तमान अवस्था में, तुम इसे कुछ ही महीनों में कर सकते हो। क्योंकि जो... जिनमें तीव्र अभीप्सा है वे **कुछ महीनों** में कर सकते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ४६६

श्रीमाँ के प्रति चैत्य रूप से उद्‌घाटित रहते हुए, कार्य अथवा साधना के लिए जो कुछ आवश्यक हो वह धीरे-धीरे क्रमशः विकसित होता जाता है—यही है साधना के मुख्य रहस्यों में से एक रहस्य—साधना का केन्द्रीय रहस्य।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १५४

आन्तरिक पथ-प्रदर्शक

साधारणतः चैत्य ही सत्ता का पथ-प्रदर्शन करता है। व्यक्ति को उसके बारे में कुछ मालूम नहीं होता क्योंकि वह उसके बारे में सचेतन नहीं होता। अगर व्यक्ति बहुत सावधान हो तो उसे उसका भान हो सकता है। लेकिन उसके बारे में अधिकतर मनुष्यों की लेशमात्र भी धारणा नहीं होती। उदाहरण के लिए, जब उन्होंने अपने बाहरी अज्ञान में अमुक चीज़ करने का निश्चय कर लिया है, और उसे सिद्ध कर सकने की जगह, परिस्थितियाँ इस तरह संगठित होती हैं कि वे कुछ और ही कर डालें, तब वे चिल्लाना, गरजना और भाग्य पर आग-बबूला होना शुरू कर देते हैं, कहते हैं कि प्रकृति दुष्ट है, या उनका भाग्य अनिष्टकर है, या भगवान् अन्यायी हैं या... जो भी हो (यह इस पर निर्भर करता है कि वे किस पर विश्वास करते हैं)। यह तब जब कि परिस्थिति बहुधा उनके आन्तरिक विकास के लिए सबसे अनुकूल थी। यह स्वाभाविक है कि यदि तुम चैत्य से यह माँग करो कि वह तुम्हारे लिए सुखद जीवन बनाने में, पैसे कमाने में, ऐसे बच्चे पैदा करने में सहायता दे जो परिवार का गौरव बनें आदि... तो चैत्य तुम्हारी सहायता नहीं करेगा! लेकिन वह तुम्हारे लिए ऐसी समस्त परिस्थितियाँ तैयार करे देगा जो तुम्हारे अन्दर ऐसी किसी चीज़ को जगाने के लिए आवश्यक हों ताकि तुम्हारी चेतना में भगवान् के साथ ऐक्य की आवश्यकता जन्म ले। कभी-कभी तुमने बहुत बढ़िया योजनाएँ बनायीं और अगर वे सफल हो जातीं तो तुम अधिकाधिक अपने बाह्य अज्ञान में, अपनी तुच्छ और मूर्खतापूर्ण महत्त्वाकांक्षा में और अपनी उद्देश्यहीन क्रिया में ही अधिकाधिक जमे रहते। जब कि यदि तुम्हें एक अच्छा धक्का मिले और जिस पद के लिए तुम लोभ कर रहे थे उससे तुम्हें वञ्चित रखा जाये, तुमने जो योजना बनायी थी वह चूर-चूर हो जाये, और तुम अपने-आपको बिलकुल निष्फल और व्यर्थ पाओ, तो कभी-कभी यह विरोध तुम्हारे लिए किसी सत्यतर और गहनतर वस्तु के द्वार खोल देता है। और जब तुम कुछ जाग्रत् होओ और पीछे मुड़ कर देखो तो, यदि तुम ज़रा भी सच्चे या निष्कपट होओ तो कहोगे : "आह! मैं ठीक नहीं था—'प्रकृति', 'भागवत कृपा' या मेरे चैत्य पुरुष ने ही यह किया है।" चैत्य पुरुष ने यह व्यवस्था की थी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ४३१-३२

आन्तरिक खोज-बत्ती

योग में एक विशेष अवस्था में पहुँचने पर, जब मन पर्याप्त अचञ्चल हो जाता है और पहले की तरह पग-पग पर अपने मानसिक निश्चयों की क्षमता का आश्रय नहीं लेता, जब प्राण स्थिर और वशीभूत हो जाता है और अपनी अविवेकपूर्ण इच्छाशक्ति, माँग और कामना के सम्बन्ध में पहले की तरह निरन्तर आग्रहशील नहीं रहता, और जब शरीर को भी इतना बदल दिया जाता है कि वह आन्तरिक ज्वाला को अपनी बहिर्मुखता, जड़ता या निष्क्रियता के ढेर के नीचे पूरी तरह से दबा नहीं सकता, तब एक भीतर छिपी हुई और अपने विरल प्रभावों के समय ही अनुभूत होने वाली अन्तरतम सत्ता सामने आने में समर्थ हो जाती है, यह शेष अंगों को भी आलोकित कर सकती है तथा साधना का नेतृत्व अपने हाथ में ले सकती है। इसका स्वभाव ही है भगवान् या सर्वोच्च देव की ओर अनन्य अभिमुखता—एक ऐसी अनन्य अभिमुखता जो अनन्य होते हुए भी क्रिया तथा गति में नमनशील होती है। यह एकनिष्ठ बुद्धि की तरह किसी लक्ष्य की कट्टरता को अथवा एकनिष्ठ प्राणिक शक्ति की भाँति किसी प्रभुत्वशाली विचार या आवेग की हठधर्मिता को जन्म नहीं देती। हर क्षण और नमनशील असन्दिग्धता के साथ यह सत्य की ओर ले जाने वाले मार्ग का निर्देश करती है, सही क़दम और ग़लत क़दम में सहज ही भेद जतलाती है, दिव्य या ईश्वरमुखी गति को अदिव्य वस्तु के चिपटने वाले मिश्रण से पृथक् कर देती है। इसका कार्य एक जाज्वल्यमान मशाल के समान है जो उस सबको स्पष्ट दिखा देती है जिसे प्रकृति में बदलना है। इसमें संकल्प की एक अग्नि है जो पूर्णता के लिए और समस्त आन्तर तथा बाह्य सत्ता के रूपान्तरकारी परिवर्तन के लिए आग्रह करती है। यह सर्वत्र दिव्य सारतत्त्व ही देखती है और आवरण एवं आवरक आकार का परित्याग कर देती है। यह सत्य, संकल्प-शक्ति, बल, प्रभुत्व तथा हर्ष, प्रेम एवं सौन्दर्य की आग्रहपूर्वक माँग करती है तथा स्थिर ज्ञान के उस सत्य की भी जो अज्ञान के व्यावहारिक क्षणिक सत्य का अतिक्रमण कर जाता है, केवल प्राणिक सुख की नहीं, बल्कि माँग करती है आन्तरिक हर्ष की, क्योंकि यह पतनकारी सुखों की अपेक्षा पवित्रीकारक कष्ट-कलेश को कहीं अधिक पसन्द करती है; यह उस प्रेम की माँग नहीं करती जो अहंकारमय

लालसा के खूँटे से बँधा हुआ है या जिसके पैर पंक में फँसे हुए हैं, बल्कि ऊँची उड़ान लेने वाले प्रेम की, उस सौन्दर्य की जो सनातन का निरूपण करने के अपने पुरोहित-पद पर प्रतिष्ठित है तथा अहं की नहीं, बल्कि आत्मा के यन्त्रों के रूप में काम आने वाले बल, संकल्प और प्रभुत्व की आग्रहपूर्वक माँग करती है। इसका संकल्प जीवन को दिव्य बनाने, उसके द्वारा उच्चतर सत्य को अभिव्यक्त करने और उसे भगवान् तथा सनातन सत्ता पर उत्सर्ग कर देने के लिए होता है।

CWSA खण्ड २३, पृ. १५४-५५

चैत्य की उच्चतम की ओर उड़ान

चैत्य पुरुष की सबसे घनिष्ठ विशेषता है, पवित्र प्रेम, आनन्द तथा एकत्व के द्वारा भगवान् को पाने की भरपूर चेष्टा करना। उसकी सबसे उत्कट आकांक्षा होती है, भागवत प्रेम को पाना। प्रभु के लिए प्रेम ही उसकी प्रेरणा, उसका लक्ष्य, 'सत्य' का उसका वह सितारा होता है जो हमारे अन्दर के नवजात देवत्व के नवोदित या अभी भी अन्धकार से ढके पालने की प्रकाशमय गुहा पर चमक रहा होता है। अपने विकास की पहली अवस्था में, जब तक चैत्य हमारे अन्दर पूरी तरह छाया नहीं रहता, वह पार्थिव प्रेम, दुलार, कोमलता, सद्भावना, दयालुता, शुभेच्छा तथा समस्त सुन्दरता, मृदुता, सूक्ष्मता, प्रकाश और बल तथा साहस का सहारा लिये रहता है, यानी उन सब गुणों को विकसित करना चाहता है जिनकी सहायता से मानव प्रकृति की समस्त स्थूलता और साधारणता को सुसंस्कृत तथा सुपवित्र बनाया जा सके। लेकिन वह यह भी जानता है कि अपने उत्तम से उत्तम रूप में भी ये सभी मानव गतियाँ दूसरी गतियों से बहुत मिली-जुली होती हैं और साथ ही यह भी कि अपने निकृष्टतम रूप में ये कितनी गिरी हुई होती हैं और साथ ही अहंकार, आत्म-वञ्चना और मिथ्यात्व से भरी होती हैं। लेकिन एक बार चैत्य अपने पूरे आवेग में उठ आये तो वह हमारे अन्दर के सभी पुराने बन्धनों और अपूर्ण भावनात्मक गतियों को जड़ से उखाड़ कर, उनके स्थान पर प्रेम तथा एकता के महानतर आध्यात्मिक 'सत्य' को बिठाने के लिए लालायित रहता है। हो सकता है कि फिर भी वह मानव रीतियों और गतियों को स्वीकार कर ले लेकिन

इसी शर्त पर कि वे 'एकमेव' देव की ओर मोड़ दी जायेंगी। वह केवल उन्हीं सम्बन्धों को स्वीकार करता है जो सहायक होते हैं—हृदय में गुरु के लिए मान-सम्मान, भगवान् के अभीप्सुओं के साथ तादात्म्य, इस अज्ञानी मानव और पशु-जगत् तथा इसके निवासियों के लिए एक आध्यात्मिक करुणा और सौन्दर्य का वह हर्ष, सुख एवं सन्तोष जो सर्वत्र भगवान् के दर्शन करने से ही प्राप्त होता है।... वह मनुष्य के स्वभाव को परात्पर आनन्द की ओर मोड़ देता है और ऊपर 'उच्चतम' की ओर उड़ान भरने के लिए अपने पंखों से समस्त निम्न आकर्षण को झाड़ फेंकता है, लेकिन साथ ही वह उस परम 'प्रेम' तथा 'आनन्द' से प्रार्थना करता है कि वे इस धरती पर उतर कर इसे अपने आलिंगन में भर लें ताकि यहाँ का अन्धकार और अज्ञान ख़तम हो जायें।

CWSA खण्ड २३, पृ. १५५-५६

अन्तरात्मा की आवाज़

सामान्य अन्तःकरण की आवाज़ नैतिक आवाज़ होती है, एक ऐसी नैतिक आवाज़ जो अच्छे और बुरे के अन्दर फ़र्क करती है, हमें शुभ करने के लिए प्रोत्साहित करती और अशुभ करने से रोकती है। सामान्य जीवन में यह आवाज़ तब तक बहुत उपयोगी होती है जब तक मनुष्य अपनी चैत्य सत्ता के बारे में सचेतन न हो जाये और अपने-आपको पूरी तरह उसके पथ-प्रदर्शन में न दे दे—दूसरे शब्दों में कहें तो जब तक वह सामान्य जीवन से ऊपर न उठ जाये, अपने-आपको समस्त अहंकार से मुक्त न कर ले और भागवत इच्छा का सचेतन यन्त्र न बन जाये। स्वयं अन्तरात्मा भगवान् का अंश होने के नाते सभी नैतिक और सदाचारी धारणाओं से परे है। वह दिव्य प्रकाश में स्नान करती और उसे अभिव्यक्त करती है, लेकिन वह समस्त सत्ता पर शासन तभी कर सकती है जब अहंकार विलीन हो जाये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. २८२

चैत्य कभी भी अवसन्न नहीं होता। —श्रीमाँ

जेनरेटर तथा बत्ती

चैत्य पुरुष का क्या काम है?

चैत्य पुरुष का क्या काम है? तुम चाहते हो कि उसके पास कुछ काम हो? तुम ठीक-ठीक क्या कहना चाहते हो? उसकी क्या भूमिका है? ओह! बहुत अच्छा। हम इस तरह कह सकते हैं कि वह बिजली के तार की तरह है जो जेनरेटर को बत्ती के साथ जोड़ता है।...

जेनरेटर कौन-सा है और बत्ती कौन-सी? (हँसी)

लो, यह रहे! तो, जेनरेटर कौन-सा है और बत्ती कौन-सी? ठीक यही तो बात है। जेनरेटर क्या है, और बत्ती क्या है? या यूँ कहें, कौन जेनरेटर है, और कौन बत्ती?

भगवान् जेनरेटर हैं और शरीर बत्ती।

यह शरीर ही है, यह दृश्य सत्ता है।

तो यही उसका व्यापार है। इसका अर्थ यह है कि अगर 'जड़-तत्त्व' में चैत्य न होता तो वह भगवान् के साथ सीधा सम्पर्क न जोड़ पाता। सौभाग्यवश 'जड़' में इस चैत्य उपस्थिति के कारण ही 'जड़' और भगवान् में सीधा सम्पर्क हो सकता है और सभी मनुष्यों से कहा जा सकता है: "तुम भगवान् को अपने अन्दर लिये हुए हो, तुम्हें बस अपने अन्दर पैठना है और तुम उन्हें पा लोगे।" यह मनुष्यों के लिए, बल्कि धरती के वासियों के लिए बहुत ही विशेष बात है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. १८२-८३

अन्तःप्रेरणाएँ प्राप्त करना

किसी ने मुझसे यह भी पूछा है कि क्या चैत्य पुरुष अथवा चैत्य चेतना ही वह माध्यम है जिसके द्वारा अन्तःप्रेरणा आती है।

साधारणतः, हाँ। उच्चतर लोकों के साथ जो हमारा पहला सम्पर्क होता

है वह चैत्य सम्पर्क होता है। अवश्य ही, आन्तरिक चैत्य उद्घाटन होने से पहले अन्तःप्रेरणा पाना दुष्कर है। किसी विशेष प्रकार से तथा किसी विशेष अवस्था में, भागवत कृपा के रूप में अन्तःप्रेरणा आ सकती है, पर सच्चा सम्पर्क तो चैत्य पुरुष के द्वारा ही प्राप्त होता है, क्योंकि चैत्य चेतना वह माध्यम है जो भागवत 'सत्य' के साथ सबसे अधिक सम्बद्ध है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ७

अतिमानसिक जीवन का प्रवेश-द्वार

यह कहा जा सकता है कि जीवन में किसी चैत्य भाव से—जो जड़-पदार्थ में भागवत 'उपस्थिति' की प्रतिच्छाया के समान, एक आलोकित निस्सरण के समान है—अतिमानसिक चेतना की ओर जाने की अपेक्षा मानसिक से अतिमानसिक जीवन की ओर जाना कहीं अधिक कठिन है। उच्चतम बौद्धिक चिन्तन से किसी भी अतिमानसिक स्पन्दन तक जाने की अपेक्षा चैत्य भाव से अतिमानसिक चेतना तक जाना कहीं अधिक आसान है। शायद यह शब्द ही हमें धोखा देता है! शायद, चूँकि हम उसे "अतिमानसिक" कहते हैं, इसलिए उच्चतर मानसिक, बौद्धिक क्रिया द्वारा उस तक पहुँचने की आशा करते हैं? लेकिन तथ्य बहुत भिन्न है। इस अति उच्च, अति शुद्ध, अति प्रशस्त, बौद्धिक क्रिया द्वारा मनुष्य एक तरह की ठण्डी, शक्तिहीन भावमयता की ओर, एक बुझी ज्योति की ओर जाता दीखता है जो निश्चित ही जीवन से बहुत दूर है और अतिमानसिक सत्य के अनुभव से तो और भी अधिक दूर।

इस नये पदार्थ में, जो संसार में फैल रहा है और काम कर रहा है, इतनी प्रगाढ़ एक उष्णता है, शक्ति और आनन्द है कि इसके सामने सारी बौद्धिक क्रिया ठण्डी और शुष्क दीखती है। और इसीलिए इन विषयों पर जितना कम बोला जाये उतना अच्छा। मात्र एक क्षण, गहरे और सच्चे प्रेम की मात्र एक उछाल, बोध का वह सिर्फ़ एक क्षण जो भागवत कृपा में मिलता है, सब सम्भव व्याख्याओं की अपेक्षा लक्ष्य के अधिक समीप ले जाता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ३५६

चैत्य दर्पण

बस, एक ही उपाय है। वह मार्ग-निदेशक हमेशा रहना चाहिये। तुम्हारी भावनाओं, तुम्हारे आवेगों और संवेदनों में हमेशा दर्पण ठीक स्थान पर लगा रहना चाहिये। तुम उन्हें इस दर्पण में देखते हो। उनमें से कुछ बहुत सुन्दर या देखने में मोहक नहीं होते, जब कि दूसरे सुन्दर और मोहक होते हैं और उन्हें रखना चाहिये। ज़रूरत पड़े तो तुम इसे दिन में सौ बार करते हो। और वह बहुत मज़ेदार होता है। तुम अपने चैत्य दर्पण के चारों ओर एक घेरा खींच देते हो और अपने सभी तत्त्वों को उसके इर्द-गिर्द बिठा देते हो। अगर कोई चीज़ ठीक नहीं है तो वह दर्पण पर एक धुँधली-सी छाया डालती है। इस तत्त्व को हटाना होगा, व्यवस्थित करना होगा। उससे बातचीत करनी होगी, उसे समझाना होगा। तुम्हें उस अँधेरे से बाहर आना होगा। अगर तुम ऐसा करो तो कभी न उकताओगे। जब लोग भद्र न हों, जब तुम्हारे सिर में सर्दी हो, जब तुम्हें अपना पाठ याद न हो आदि-आदि, तो तुम इस दर्पण में देखना शुरू करते हो। यह बहुत मज़ेदार है, वहाँ तुम नासूर देखते हो। "मैंने सोचा था कि मैं निष्कपट हूँ"—बिलकुल नहीं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ११-१२

'सत्य' की अभिव्यक्ति

चैत्य को परम सत्य ही गति देता है। परम सत्य ऐसी चीज़ है जो शाश्वत रूप से स्वयं सत् है। वह देश और काल में किसी पर निर्भर नहीं होता जब कि चैत्य सत्ता ऐसी सत्ता है जो बढ़ती है, रूप लेती है, प्रगति करती है और अधिकाधिक व्यष्टि-रूप लेती है। इस तरह वह इस परम सत्य को अभिव्यक्त करने में अधिकाधिक समर्थ हो जाती है, उस शाश्वत सत्य को जो एक और चिरस्थायी है। चैत्य सत्ता प्रगतिशील सत्ता है अर्थात्, चैत्य सत्ता और परम सत्य के बीच प्रगतिशील सम्बन्ध होता है। यह सम्भव नहीं है कि तुम्हें चैत्य सत्ता का तो भान हो पर साथ ही आन्तरिक सत्य का भान न हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ३४०-४१

स्थायी सुख का मूल चैत्य में है। —श्रीमाँ

सम्बन्धों में सामञ्जस्य का रहस्य

मनुष्य की दूसरों के साथ अपने सम्बन्ध को शारीरिक, प्राणिक या मानसिक सम्पर्कों पर आधारित करने की आदत है, इसी कारण, वहाँ प्रायः सदा ही असामञ्जस्य और कष्ट रहता है। इसके विपरीत, यदि उन्होंने अपने सम्बन्धों को आन्तरात्मिक सम्पर्कों (आत्मा का आत्मा के साथ) पर आधारित किया होता तो वे देखते कि विक्षुब्ध बाह्य प्रतीतियों के पीछे, एक गहन और स्थायी समस्वरता विद्यमान है जो जीवन की सभी गतिविधियों में व्यक्त हो सकती है और इस समस्वरता के कारण ही यह अव्यवस्था और कष्ट शान्ति और आनन्द में परिवर्तित हो जायेंगे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. २८५

दुःख-दर्द का इलाज

यदि किसी समय तुम्हें कोई गभीर दुःख, दारुण संशय या तीव्र कष्ट अभिभूत और हताश कर रहा हो तो शान्ति और स्थिरता पुनः प्राप्त करने का एक अचूक साधन है।

हमारी सत्ता की गहराइयों में एक ज्योति चमक रही है जो जितनी चमकदार है उतनी ही पवित्र भी। वह ज्योति विश्वव्यापी भगवान् का सजीव और सचेतन अंश है, वह जड़-तत्त्व को जीवन, पोषण और प्रकाश प्रदान करती है। वह उन लोगों की सशक्त और अचूक पथप्रदर्शिका है जो भगवान् का विधान जानने-मानने की इच्छा रखते हैं। जो उन्हें देखने की, उनकी आवाज़ सुनने की, उनके आदेश का पालन करने की अभीप्सा रखते हैं, यह आश्वासन और प्रेम से परिपूर्ण उनकी सहायिका है। उनके प्रति की गयी कोई भी सच्ची और स्थायी अभीप्सा व्यर्थ नहीं जा सकती; उन पर किया गया कोई भी दृढ़ और आदरपूर्ण विश्वास निराश नहीं हो सकता; कोई भी आशा भंग नहीं हो सकती।

मेरे हृदय ने भी दुःख झेला है और कातर पुकार की है, दुःख के भारी बोझ से टूटने-टूटने को होकर, अत्यधिक यन्त्रणा से दलित होकर...। पर, हे शान्तिदायक भगवान्, मैंने तुझे पुकारा, उत्कण्ठा से तुझसे प्रार्थना की और तेरी दीप्तिमान् ज्योति की प्रभा प्रकट हुई और उसने मुझे नवजीवन दान दिया।

जब तेरी महिमा की किरणों ने मेरे अन्दर प्रवेश कर मेरी सम्पूर्ण सत्ता को प्रकाशित कर दिया तो मैंने स्पष्ट देखा कि मुझे किस पथ पर चलना है और दुःख की क्या उपयोगिता हो सकती है; जिस दुःख ने मुझे निचोड़ डाला था वह इस पृथ्वी के दुःख, अतल वेदना और यातना की कितनी हलकी-सी परछाईं मात्र है, यह मैंने समझा।

जो स्वयं दुःख भोग चुके हैं केवल वे ही दूसरों का दर्द समझ सकते हैं, उसमें हिस्सा बँटा सकते हैं, और उसे हलका कर सकते हैं। और मैं यह भी समझ गयी हूँ, हे शान्तिदायक भगवान्, हे परम आत्म-त्यागी, कि हमारे सब कष्टों के बीच हमें सहारा देने के लिए, हमारे सारे दुःख और दर्द शान्त करने के लिए तूने पृथ्वी तथा मनुष्य के सकल दुःखों को, बिना किसी अपवाद के, जाना तथा अनुभव किया होगा।...

मैं अब समझ रही हूँ कि ये सब कष्ट जड़-पदार्थ की अपूर्णता से आते हैं, जो अपनी अव्यवस्था और अपरिपक्वता के कारण तुझे अभिव्यक्त करने के अयोग्य है; और उससे सर्वप्रथम कष्ट भी तू ही पाता है, इससे असन्तुष्ट हो, अपनी तीव्र उत्कण्ठा में तू ही सबसे पहले अव्यवस्था को व्यवस्था में, दुःख को सुख में, विरोध को सामञ्जस्य में परिवर्तित करने के लिए प्रयत्न और परिश्रम करता है।

कष्ट अनिवार्य नहीं है, वाञ्छनीय भी नहीं, पर जब वह आता है तो हमारे लिए कितना उपयोगी हो सकता है!

प्रत्येक बार जब दुःख के बोझ से हृदय टूटता प्रतीत होता है, तब अन्तर की गहराई में एक द्वार खुलता है और अधिकाधिक समृद्ध गुप्त रत्नराशि लिये नये-नये क्षितिज प्रकट होते हैं और उनकी स्वर्णिम आभा विनाश के कगार पर खड़े जीवन को एक नवीन और अधिक प्रखर जीवन प्रदान करती हुई आती है।

और जब, उत्तरोत्तर अवतरणों से होता हुआ मनुष्य उस यवनिका तक पहुँचता है जिसके उठते ही साक्षात् 'तू' प्रकट होता है, तब, 'हे प्रभु', कौन वर्णन कर सकता है 'जीवन' की उस प्रखरता का जो समस्त सत्ता के अन्दर पैठ जाती है, 'ज्योति' की उस शोभा का जो उसे परिप्लावित कर देती है, 'प्रेम' की उस महिमा का जो चिरकाल के लिए उसका रूपान्तर कर देती है!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. २३-२४

श्रद्धा तथा चैत्य सत्ता

प्रश्न : विश्वास किस स्तर की वस्तु है—मानसिक स्तर की या आन्तरात्मिक की?

उत्तर : विश्वास सम्पूर्णतया आन्तरात्मिक विषय है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ३३५

हर एक के लिए अपने चैत्य को ढूँढ़ना और उसके साथ निश्चित रूप से तादात्म्य पाना अनिवार्य है। अतिमानस अपने-आपको चैत्य द्वारा ही अभिव्यक्त करेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ११९

बहुत से, बहुत से लोग मन में रहते हैं : अधिकाधिक मानसिक कठिनाइयों और समस्याओं से घिरे हुए... वे उनसे पार नहीं जा सकते। यह एक अनन्त प्रक्रिया है। और इसी कारण सारी लड़ाइयाँ, सारे मन-मुटाव, सारी उथल-पुथल होती रहती है।

जानते हो, एक उत्कट श्रद्धा, एक चैत्य अभीप्सा, एक उत्साह, आत्मदान की एक क्रिया—अपने ऊपर मुड़ने की बजाय, हमेशा अपने ही अहंकार को पोसने की जगह... एक आत्मोत्सर्ग—संसार को बचाने के लिए बस इसी की आवश्यकता है!

मानसिक विश्वास काफ़ी नहीं है, तीव्र चैत्य उत्साह की आवश्यकता है—आत्मोत्सर्ग, आत्म-विलयन की आवश्यकता है।

१९ अक्तूबर १९६७

(एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से)

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

नवम्बर

१. स्पष्ट है कि काम में घनिष्ठ सहयोग पर एकाग्र होना परस्पर शिकायतों पर एकाग्र होने की अपेक्षा ज़्यादा उपयोगी वृत्ति है।
सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि काम तेज़ी से किया जाये और अच्छी तरह किया जाये।

२. जब तक तुम निजी विचारों, मतों, पसन्दों से ऊपर नहीं उठ सकते तब तक तुम अच्छे कार्यकर्ता नहीं बन सकते। जब तक तुम्हारे अन्दर निजी पसन्दें है तब तक तुम ठीक वह चीज़ न कर पाओगे जिसकी ज़रूरत है।

३. काम के लिए चिन्ता न करो, जितनी स्थिरता और शान्ति से तुम काम करोगे वह उतना ही ज़्यादा प्रभावकारी होगा।

४. भगवान् के लिए काम करना बहुत अच्छा है, यह आनन्द है। लेकिन भगवान् के साथ काम करना, उससे भी कहीं अधिक गहरा और अधिक मधुर परम आनन्द है।

५. चैत्य केन्द्र : ज्योतिर्मय, शान्त और स्थिर, उसे मानव सत्ता पर शासन करने के लिए ही बनाया गया है।

६. संकल्प करना सीखना बहुत ज़रूरी चीज़ है। और सचमुच संकल्प करने के लिए तुम्हें अपनी सत्ता को एक बनाना होगा। वास्तव में, एक सत्ता होने के लिए, पहले तुम्हें अपने-आपको एक करना चाहिये।

७. श्रीअरविन्द निरन्तर हमारे साथ हैं और जो लोग उन्हें देखने और सुनने के लिए तैयार हैं उनके आगे वे अपने-आपको प्रकट करते हैं।

८. जगत् के इतिहास में श्रीअरविन्द जिस चीज़ का प्रतिनिधित्व करते हैं वह कोई शिक्षा नहीं है, वह कोई अन्तःप्रकाश भी नहीं है, वह परम पुरुष की निर्णायक क्रिया है।

९. बेचैन न होओ, शान्ति के साथ अपने हृदय में एकाग्र रहो और तुम मुझे वहाँ पाओगे।

१०. तुम्हारी चेतना के जागने से मैं ख़ुश हूँ। तुम्हें उसे अधिकाधिक

विकसित होने देना चाहिये ताकि प्रकाश हर जगह प्रवेश कर सके, सबसे अधिक अँधेरे कोनों में भी जा सके।

११. मिथ्यात्व से मुक्त होने का उत्तम मार्ग है भगवान् में पूर्ण, सर्वांगीण और अखण्ड श्रद्धा तथा विश्वास बनाये रखना।

१२. संसार में प्रत्येक व्यक्ति को वैसा ही प्रेम मिलता है जैसा कि स्वयं उसमें होता है। एकमात्र परम प्रभु का ही प्रेम स्थिर और शाश्वत होता है।

१३. भौतिक रूप में, स्थूल रूप में, इस पृथ्वी पर, कृतज्ञता के अन्दर ही शुद्धतम आनन्द का स्रोत पाया जाता है।

१४. अपनी अभीप्सा में सच्चे होने का अर्थ है—भगवान् को भगवान् के लिए चाहना, न कि नाम, यश, प्रतिष्ठा या शक्ति या मिथ्याभिमान की किसी प्रकार की तुष्टि के लिए चाहना।

१५. सभी चीज़ों में हानि की मात्रा अपूर्णता का परिणाम सूचित करती है और उसे अनिवार्य प्रगति के लिए एक शिक्षा के रूप में ग्रहण करना चाहिये।

१६. भयभीत न होओ—भगवान् मृत्यु से भी अधिक शक्तिशाली हैं और वे तुम्हारे साथ हैं।

१७. मिथ्यात्व से ऊपर उठो, अपनी अन्तरात्मा की विशुद्ध ज्योति में निवास करो, और तुम परम प्रभु के निकट, बहुत निकट, रहने लगोगे।

१८. अपने मन को कठिनाई की ओर से पूरी तरह मोड़ लो, ऐकान्तिक रूप से ऊपर से आने वाली शक्ति और प्रकाश पर एकाग्र होओ, परम प्रभु तुम्हारे शरीर के लिए जो चाहते हैं वही उन्हें करने दो। अपनी भौतिक सत्ता का समस्त उत्तरदायित्व पूरी तरह से उनके हाथों में सौंप दो। यही उपचार है।

१९. भगवान् सुनते हैं और आशीर्वाद देते हैं, उनके प्रेम की अनुकम्पा चिरकाल हमारे साथ है। हमारी सच्चाई ही उनकी विजय है।

२०. समस्त अहंकार और अन्धकार को विलीन कर देने के लिए हमारे हृदय में सदा कृतज्ञता की शुद्ध ज्वाला, ऊष्माभरे, मधुर, उज्ज्वल रूप में जलती रहनी चाहिये।

२१. दिन-रात भागवत सत्ता सदा उपस्थित रहती है। चुपके से अन्दर की ओर मुड़ना काफ़ी है, हम उसे खोज लेंगे।

मेरे प्यारे बालक, इस वर्ष तुम्हें यह अनुभूति प्राप्त हो।

२२. अगर मैं सारे प्रतिरोध छोड़ पाऊँ तो सब कुछ कितना सरल हो जायेगा। काश! मैं तेरे चरणों पर अपने-आपको निछावर कर दूँ और सम्पूर्ण समर्पण में, पूर्ण आत्म-विस्मृति की शान्त निद्रा का सुख भोगूँ! हे प्रभु, तेरी अपरिवर्तनशील शान्ति की मधुरिमा...

२३. वस्तुएँ या क्रियाएँ उच्च या निम्न नहीं होतीं, कर्ता की चेतना सच्ची या मिथ्या होती है।

२४. तुम्हें भय और क्रोध को दूर फेंक देना चाहिये और माताजी पर दृढ़ विश्वास रखते हुए शान्ति से अपने मार्ग पर बढ़ते जाना चाहिये।

२५. तुम्हारे अहंकार की आदत है कि अगर ज़रा-सी चीज़ भी उसे नाख़ुश कर दे तो वह तुम्हारी सत्ता के दरवाज़े अक्खड़ अविश्वास की दुर्भावना के लिए खोल देता है। यह सभी पवित्र और सुन्दर चीज़ों पर कीचड़ और गन्दगी फेंकता है, विशेषकर तुम्हारी अन्तरात्मा की अभीप्सा और भागवत कृपा से मिलने वाली सहायता पर।

२६. तुम ज्योतिषियों की बात पर विश्वास ही क्यों करते हो? यह विश्वास ही मुश्किल लाता है।
श्रीअरविन्द कहते हैं कि मनुष्य अपने-आपको जो सोचता है वही बन जाता है।

२७. जो लोग योग-साधना करते हैं उनके लिए जन्म-पत्रियों का कोई मूल्य नहीं होता। क्योंकि योग के द्वारा जो प्रभाव काम करता है वह ग्रहों के प्रभाव से कहीं अधिक शक्तिशाली होता है।

२८. कभी रूप-रंग के आधार पर निर्णय न करो, गप के आधार पर तो और भी नहीं। जो एक देश में नैतिक है वही किसी और देश में अनैतिक। भगवान् की सेवा आत्म-आहुति की ऐसी सच्चाई की माँग करती है जिसका किसी नैतिकता को पता भी नहीं है।

२९. धन के लिए लोभ: अपने अन्तःकरण को कम करने और अपनी प्रकृति को संकीर्ण बनाने का सबसे निश्चित तरीक़ा।

३०. अपनी कठिनाइयों को भूल जाओ। केवल भागवत कार्य करने के लिए उनके अधिकाधिक पूर्ण यन्त्र बनने के बारे में सोचो और भगवान् तुम्हारी सारी कठिनाइयों को जीत कर तुम्हें रूपान्तरित कर देंगे।

काक-परिचय

जंगली कौआ

(२)

हम जिसे जंगली या पहाड़ी कौआ कहते हैं वह पूरा-पूरा गहरा काला होता है जब कि सामान्य कौए की छाती और पंखों का रंग कुछ हलका होता है। ये कौए आबादी में कम ही आया करते हैं और आते भी हैं तो इक्के-दुक्के। कहते हैं कि रामायण में जिन काक भुषुण्ड का नाम आता है वे इसी जाति के थे। कहते हैं कि काक भुषुण्ड बहुत बड़े ऋषि थे और भगवान् राम के बचपन में उनके साथ खेला करते थे और कभी-कभी उनके हाथ से रोटी छीन ले जाते थे। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के समय में भी वे बालक कृष्ण से खेलने आते थे। काक भुषुण्ड ने ही रामायण की कथा गरुड़जी को सुनायी थी। हाँ, तो इन काक भुषुण्ड के एक वंशज मेरे एक मित्र के यहाँ आने लगे। मेरे इन मित्र को जानवरों और पेड़-पौधों के साथ विशेष प्रेम था। वे उनकी भावनाओं को समझ सकते थे। उदाहरण के लिए, अगर माली किसी पेड़ में पानी देना भूल गया हो तो रात को वे अनमने से हो उठते, मानों पेड़ पुकार रहा हो। वे इधर-उधर चक्कर लगाते और आख़िर उस पेड़ के पास जा पहुँचते जिसे पानी नहीं दिया गया था। उनके पाले हुए कुत्ते-बिल्ली पर कहीं कोई आफ़त आयी हो तो उन्हें झट पता लग जाता और वे दौड़े-दौड़े घटनास्थल पर जा पहुँचते और जाकर मालूम होता कि बात सच्ची थी। ख़ैर, तो इन मित्र के यहाँ इस जंगली कौए ने खाने के लिए आना शुरू किया। वे भी नियमित रूप से उसके लिए खाना तैयार करके रखने लगे। मँजे हुए साफ़ बरतन में दूध-रोटी और शक्कर मिला कर गरम करते और जब कौआ आता तो भोजन की गोलियाँ बना-बना कर उसके सामने रखते। कौए को भी इसकी आदत हो गयी। मित्र अगर अपने कमरे में न होते तो कौआ उनकी खिड़की पर बैठ कर उन्हें बुलाता और अगर वे सो रहे होते तो चादर खींच कर जगा देता। समय बीतता गया। कौए का साहस बढ़ा। अगर मित्र कमरे में न होते तो वह उनके भोजन-गृह में घुस जाता और वहाँ अपने-आप खाना खाने लगता। बाद में इसने मित्र की गोद में खाना शुरू कर दिया। महीनों

यह कार्यक्रम चलता रहा। अचानक एक दिन कौआ न आया। मित्र प्रतीक्षा करते रहे पर वह उन्हें विरह-वेदना में छोड़ कर न जाने कहाँ चला गया, उसके बाद किसी ने उसकी शकल न देखी।

*

जैसे कौए के साथ दोस्ती करके उसके कई गुणों का परिचय मिला उसी प्रकार उसके प्रति अनख ने और कई गुण दिखलाये। ऐसा लगता है मानों यूरोपियनों को कौआ विशेष रूप से नापसन्द होता है और एक बार जहाँ अनख उत्पन्न हुई कि बस वह घृणा ही बन जाती है और उनके लिए 'का...का...का' शब्द सुनना ही असम्भव हो जाता है।

मेरे मकान के सामने एक अंग्रेज़ अफ़सर का घर था। उसे कौओं से बहुच चिढ़ थी। कौआ छज्जे पर आकर बैठा नहीं कि साहब झट नौकर को भेजते या अपने-आप बाहर आकर उसे उड़ाते। छज्जे पर छाया रहती थी इसलिए कौए दोपहर की गरमी में वहाँ आराम करना चाहते थे और इससे साहब की शान्ति भंग होती थी। दोपहर को बेचारे साहब का पारा ख़ूब चढ़ जाया करता था। वे आकर कौए को उड़ाते तो कौआ फुदक कर थोड़ी दूर जा बैठता और फिर अपना राग अलापना शुरू करता। साहब अन्दर जाते तो फिर छज्जे पर आ धमकता। सारी दोपहर यही तमाशा रहता। एक दिन साहब ने छज्जे पर मरे कौए के आकार का एक काला कपड़ा टाँग दिया। सोचा था अब कौए नहीं आयेंगे। पर हुआ क्या? कौए छज्जे पर तो नहीं आये पर मकान के चारों ओर मँडराने लगे और आस-पास के कौओं ने भी शोक-सभा में लेक्चर झाड़ना शुरू किया। बेचारे साहब का दाँव उलटा पड़ गया।

हमारे पड़ोस में एक अमरीकन महिला ने मकान लिया। इन्हें भी कौओं से बड़ी चिढ़ थी। रोज़ कौआ उनकी खिड़की पर बैठ जाता और कहीं कुछ खाने की चीज़ दिखायी दे जाती तो उसे ले भागता। महिला देख पातीं तो झट आकर कौए को उड़ा देतीं। कौआ थोड़ी देर इधर-उधर चक्कर लगा कर फिर आ धमकता और महिला फिर उसके पीछे पड़तीं। उनकी चिढ़ बढ़ती गयी, जैसे ही कौए को देखतीं कि बस मारने दौड़तीं और कौआ उड़ जाता तो खिड़की के पीछे छिप कर खड़ी हो जातीं। लेकिन कौआ आख़िर

कौआ था। उसने देखा कि साथ के कमरे की खिड़की पूर्व की तरफ़ खुलती है। बस, फिर क्या था, महिला उत्तर की खिड़की पर आतीं तो कौआ पूर्व की खिड़की पर और महिला पूर्व की ओर तो कौआ उत्तर! बेचारी वयस्क महिला दौड़ते-दौड़ते परेशान हो जातीं और कौए को मज़ा आता।

एक बार इन महिला का एक सुन्दर-सा काँच का कटोरा गुम हो गया। उन्हें नौकर पर शंका हुई। उसे डराया-धमकाया। उसने बहुत कहा कि मैंने चोरी नहीं की, पर महिला का सन्देह दूर न हुआ। काफ़ी दिनों के बाद माली आँगन में खड़े हुए आम के पेड़ पर से आम उतार रहा था। पेड़ पर कौओं का घोंसला देख कर उसे कुछ उत्सुकता हुई। देखता क्या है, उस घोंसले के अन्दर वह काँच का कटोरा सजा हुआ है। कौए साहब को कटोरा पसन्द आ गया होगा और वे अपना शयनागार सजाने के लिए उसे चोंच में दबा कर ले गये होंगे!

यह तो मनुष्यों के साथ शरारत हुई। इनकी और शरारतों के बारे में फिर कभी।

(क्रमशः) —श्री कृष्णलाल भट्ट

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

भगवान् के साथ आध घण्टा

जीवन और योग दोनों में मनुष्य की एक बहुत बड़ी समस्या होती है, भगवान् के साथ घनिष्ठता पैदा करना। एक ऐसा सञ्चार-सूत्र बनाना जिससे वह पथ-प्रदर्शन पा सके और उसके अनुसार चल सके। मनुष्य यह नहीं जानता कि स्वयं उसे सञ्चार-सूत्र नहीं बनाना पड़ेगा, उसे सायुज्य नहीं बनाना होगा। स्वयं भगवान् सञ्चार-सूत्र बनायेंगे और वे ही तुम्हारे पास पहुँचते हैं और तुम्हारी चेतना को व्यवस्थित करते हैं, वे ही जो कहना है वह कहते हैं और जो कुछ करना है कर देते हैं। तुम्हें केवल उनके साथ जुड़ जाना और बटन दबा देना होता है। बस तुम्हारा काम इतना ही होता है। बाक़ी सब कुछ वे ही करते हैं।

श्रीअरविन्द ने कहा है : "अगर व्यक्ति एक बार आध्यात्मिक बनने को

तैयार हो जाये तो सब कुछ बदल जायेगा।" तो मुख्य चीज़ है, तुम्हारी स्वीकृति। 'मैं बदलना चाहता हूँ, मैं पूर्ण होना चाहता हूँ, मैं दिव्य बनना चाहता हूँ' और अपने-आपको बहुत खुले और निष्कपट-सच्चे भाव से उनके हाथ में रख दो। तुम्हारी सभी कामनाएँ, तुम्हारी सभी पसन्दें, यहाँ तक कि मानवजाति की सेवा करने की कामना भी, दूसरों का भला करने की इच्छा भी तुम्हारे भगवान् की ओर खुलने और बटन दबाने के मार्ग में बाधक होती है।

मैं व्यावहारिक दृष्टि से जो सबसे अच्छी सलाह दे सकता हूँ वह यह है, जब तुम सुबह-सवेरे उठो तो आधा घण्टा भगवान् के साथ बिताओ। इसे अपने जीवन का एक नियम बना लो : 'मैं उनके साथ, केवल उन्हीं के साथ कम-से-कम आधा घण्टा तो रहना ही चाहता हूँ।' भगवान् के बारे में तुम्हारी जो भी कल्पना क्यों न हो, तुम्हारे अन्दर जो भी त्रुटियाँ हों, जो भी संकोच और सन्देह हों, इस विश्वास की कमी हो कि उनके साथ कैसे नाता जोड़ा जाये, कैसे सम्बन्ध स्थापित किया जाये, ऐसी सभी शंकाओं के बावजूद एक निश्चय कर लो : 'मैं हर रोज़ कम-से-कम आधा घण्टा भगवान् के साथ बिताना चाहता हूँ। मैं उनसे बातचीत करना चाहता हूँ, अपनी समस्याएँ और अपनी अभीप्साएँ उनके आगे रखना चाहता हूँ, ठीक उसी तरह व्यवहार करना चाहता हूँ जैसे किसी निकटस्थ प्रिय व्यक्ति के साथ करूँगा।' बस यह विश्वास रखो कि भगवान् सर्व-व्यापक और सर्वज्ञ हैं और सब कुछ सुन रहे हैं। एक दिन के लिए परीक्षण करो और परिणाम देखो; बस एक दिन और तुम जानोगे कि तुम्हारे अन्दर क्या घट रहा है और तुम्हारे साथ क्या घट **सकता है**। केवल आधे घण्टे के लिए और परिणाम देखो। और अगर तुम उचित तरीक़े से एक दिन के लिए यह कर सको तो तुम्हारी सारे दिन, सारी रात, सारे जीवन यह करने की इच्छा होगी।

तुममें से जो लोग तैयार हैं, जो सचमुच उनके पथ-पदर्शन पाने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं, पूर्ण होना चाहते हैं, उनके लिए पहला और निर्णायक क़दम है, भगवान् के साथ ऐक्य स्थापित करना। तुम जानते हो कि हमारी चेतना में बचपन से, बल्कि यूँ कहें कि पिछले जन्मों से मन में कुछ संस्कार बसे हुए हैं जो भगवान् के साथ सम्बन्ध जोड़ने में बाधक

होते हैं; लेकिन एक बार यह सम्पर्क बन जाये तो भगवान् सब कुछ ठीक कर देते हैं, वहाँ सफ़ाई कर देते हैं और तब हमारे लिए सब कुछ बदल जाता है। तो, यह जान लो कि कठिनाइयाँ हल करने का यह सरलतम उपाय है। और सभी मार्ग तपस्या के, कड़े प्रयास के हैं। लेकिन उनके साथ इस प्रकार का सम्पर्क या सायुज्य तुम्हें यह बतला देगा कि वे कैसे तुम्हारी चेतना के अन्दर सब कुछ व्यवस्थित कर देते हैं।

जब तुम उनसे बातचीत करोगे तो तुम्हें आश्चर्य होगा कि तुम्हारे विचारों और तुम्हारी अभीप्सा की अपूर्णताएँ कैसे ग़ायब हो जाती हैं, वे बस ग़ायब हो जायेंगी। तुम अनुभव करोगे कि तुम उनसे जो कहना चाहते हो वह अपूर्ण है, उसे कोई और रूप लेना चाहिये।

तो, मैं तुमलोगों से बहुत संक्षेप में यह कहना चाहूँगा कि उनके साथ नाता जोड़ना सीखो और हर रोज़ उनके साथ कम-से-कम आधा घण्टा रहो। यह चौबीस घण्टों में तुम्हारा उनके साथ सबसे अच्छा सम्पर्क होगा। हाँ, आओ, तो इसके लिए हम श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के विशेष आशीर्वाद का आह्वान करें ताकि हम सभी अतिमानसिक शक्ति और प्रकाश की ओर खुल सकें। श्रीअरविन्द की चेतना हम सबके मन, प्राण और शरीर में जागे और अभिव्यक्त हो ताकि हममें से हर एक भागवत उपस्थिति और अभिव्यक्ति को फैलाने वाला केन्द्र बन सके। भगवान् करें 'उनका' आशीर्वाद हम सबके साथ हो।

(क्रमशः) —नवजातजी

"मेरी नन्हीं मुस्कान" के नाम पत्र

('मेरी नन्हीं मुस्कान' के नाम, यह उन पहले बच्चों में से थी जिन्हें आश्रम में प्रवेश मिला था। यह चौदह वर्ष की अवस्था में आयी थी। नन्हीं मुस्कान बहुत वर्षों तक माताजी के कपड़ों पर कशीदाकारी करती रहीं और फिर उनकी व्यक्तिगत सेविकाओं में से एक हो गयीं। उन्होंने सत्रह वर्ष की अवस्था में माताजी को पत्र लिखना शुरू किया था।)

माँ, मैं 'क' से नाराज़ नहीं हूँ। मैं हमेशा चुप रहने की कोशिश

करती हूँ। अतः मैं उसके और दूसरों के साथ भी केवल ज़रूरी चीज़ों के बारे में बात करती हूँ; यानी अगर वह कुछ पूछती है तो मैं जवाब दे देती हूँ और उसे बता देती हूँ कि क्या काम करना है।

माँ, मैं आपकी उपस्थिति चाहती हूँ और मैं उसे सारे समय बनाये रखने की कोशिश करती हूँ। मैं आपकी ओर अभीप्सा करती हूँ और सारे दिन और सारी रात आपको चाहती हूँ। मैं हमेशा आपके हृदय में निवास करना चाहती हूँ जहाँ मैं सदा 'क' के और उन सबके साथ रह सकूँ जो आपसे प्रेम करते हैं।

मैंने देखा है कि जब मैं एकाग्र होती हूँ या एकाग्र होने की कोशिश करती हूँ तो मैं किसी के आगे मुस्कुरा नहीं सकती और मुस्कुराऊँ तो वह कृत्रिम मुस्कान मालूम होती है।

माँ, आज सवेरे मैं यह सब 'क' को बतला देना चाहती थी, लेकिन मेरे ओठों ने इन्कार कर दिया, वे मुस्कराना न चाहते थे।

माँ, इस तरह न बोल सकना अच्छा है या बुरा? मैं जानना चाहती हूँ, क्योंकि अगर यह बुरा है तो मैं इसे नहीं चाहती; मैं पहले की तरह बोलती रहा करूँगी।

चुपचाप रहते हुए अपनी अभीप्सा में केन्द्रित रहना बहुत अच्छा है और मुझे विश्वास है कि अगर तुम 'क' के लिए अपने हृदय में गहरा स्नेह रखो तो वह इसे अनुभव कर सकेगी और फिर दुःखी न रहेगी। लेकिन निस्सन्देह, अगर तुम्हें लगता है कि तुम उसे प्रेम के साथ समझा सकोगी कि तुम्हारे अन्दर क्या हो रहा है तो यह बहुत अच्छा रहेगा।

२८ नवम्बर १९३३

माँ, आप हमेशा मुझे सुन्दर चीज़ों का वचन देती रहती हैं और मैं हमेशा उनका प्रतिरोध करती रहती हूँ। तब मैं कभी सुखी कैसे हो सकती हूँ?

तुम्हें चिन्ता न करनी चाहिये—इससे वचनों के चरितार्थ होने में सहायता नहीं मिलती। और तुम्हें धीरज भी रखना चाहिये। इस भौतिक जगत् में चीज़ों के चरितार्थ होने में समय लगता है। १२ दिसम्बर १९३३

माँ, एक बार श्रीअरविन्द ने ऐसे शब्दों में मुझे कुछ लिखा था जिन्हें मैं पढ़ न सकी, मैंने 'क' से उन्हें पढ़ने के लिए कहा। उसने कहा, "तुम माताजी की बच्ची हो श्रीअरविन्द की नहीं (यह एक मज़ाक था क्योंकि मैं आपकी लिखावट पढ़ सकती हूँ, श्रीअरविन्द की नहीं।)

क्या तुम इस बात पर विश्वास नहीं करतीं कि जब कोई माँ का बालक है तो साथ-ही-साथ श्रीअरविन्द का बालक भी है, और इसके विपरीत भी?

१६ दिसम्बर १९३३

मेरी प्यारी माँ, कल और आज मैं सारे दिन 'आइरिस' की साड़ी पर काम करती रही। आपके लिए काम करना मुझे बहुत ही प्रिय है। पता नहीं क्या लिखूँ, मुझे कुछ कहना तो है नहीं।

इतना काफ़ी है; मैं बस इतना चाहती हूँ कि हम एक-दूसरे को रोज़ ज़रा 'बोंज़ूर'—Bonjour—(सुप्रभात) कह लिया करें। जब तुम्हें कोई ख़ास बात, ज़रूरी बात या मज़ेदार बात कहनी हो तो तुम मुझे लिख दिया करो।
मधुर प्रेम।

१८ दिसम्बर १९३३

मेरी प्यारी माँ, आज भी मैंने सारे दिन "आइरिस" की साड़ी पर काम किया; मैं यह नहीं कहूँगी कि मैंने कितने घण्टे काम किया क्योंकि अगर मैं लिखूँ, "मैंने दस घण्टे काम किया", तो आप मुझे लिखेंगी, "यह आश्चर्यजनक है!"

तुम साहसी और ऊर्जस्वी बच्ची हो।
मधुर प्रेम।

१९ दिसम्बर १९३३

माँ, "आइरिस" के फूल बहुत सुन्दर हैं, वे किस चीज़ का प्रतीक हैं?

"सौन्दर्य का आभिजात्य"। यह एक अभिजात फूल है जो अपने डंठल पर सीधा खड़ा रहता है। उसके रूप को फ़्रांस के राजाओं के प्रतीक 'फ़्लर द

लीस' में अभिकल्पित किया गया है।

२३ दिसम्बर १९३३

माँ, आज भी मैं सारे दिन ब्लाउज़ पर काम करती रही।

मेरी मेहनती नन्हीं मुस्कान को मेरा समस्त स्नेह।

२९ दिसम्बर १९३३

माँ, मैं क्या लिखूँ, आज मैंने साड़ी पर काम किया।

मैं क्या कह सकती हूँ?—कि मैं तुम्हारे काम और आराम में, तुम्हारी नींद और जागरण में सदा तुम्हारे साथ हूँ।

सस्नेह।

३ जनवरी १९३४

मेरी प्यारी माँ, कल ब्लाउज़ पर इस्त्री करते हुए मैंने उसे कुछ जगहों पर झुलसा दिया।

मैंने ख़याल नहीं किया, इसलिए वह ज़्यादा कुछ न होगा। शायद इसी कारण आज सवेरे प्रणाम के समय तुम इतनी गम्भीर दीख रही थीं। तुम्हें अपने-आपको इतनी छोटी-छोटी बातों पर यन्त्रणा न देनी चाहिये।

मधुर प्रेम।

११ जनवरी १९३४

मेरी प्यारी नन्हीं बालिका, मैं संघर्ष और विजय दोनों में—सारे समय तुम्हारे साथ रहूँगी।

१३ जनवरी १९३४

माँ, आज मैंने साड़ी पर नौ घण्टे काम किया।

तब तो काम बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा होगा। तुम्हारे अन्दर काम के लिए

अद्‌भुत क्षमता है, मेरी प्यारी बच्ची।

१८ जनवरी १९३४

मेरी प्यारी बच्ची, आज सवेरे प्रणाम के समय तुम इतना अधिक रो क्यों रही थीं? मुझे बड़ा दुःख हुआ कि मैं तुम्हें दिलासा न दे सकी। क्या तुम मुझे अपने दुःख के बारे में न बतलाओगी, ताकि अगर सम्भव हो तो मैं उसे दूर कर सकूँ? तुम जानती हो कि मेरा समस्त प्रेम तथा श्रेष्ठ सदिच्छा सदा तुम्हारे साथ रहते हैं ताकि वे तुम्हें अपनी कठिनाइयों में से बाहर आने में मदद दे सकें।

२४ जनवरी १९३४

माँ, आज भी मैं सारे दिन साड़ी पर काम करती रही। कभी-कभी मैं शरारती बालिका बन जाती हूँ न, है न माँ?

शरारती नहीं, नन्हीं-सी जान, ज़रा दुःखी, और उससे मुझे कष्ट होता है, क्योंकि मैं तुम्हें हमेशा प्रकाश और आनन्द से भरा देखना चाहूँगी।

२६ जनवरी १९३४

माँ, मैं जानती हूँ कि मेरे छोटे-से हृदय में सुन्दर चीज़ें हैं। जैसा कि आप जानती हैं, बुरी चीज़ें भी हैं—माँ, मैंने उनके बारे में आपको बतलाया है।

लेकिन माँ, यह छोटा-सा हृदय प्रेम से भरा है, सभी बुरी चीज़ों को हम इस छोटे-से हृदय के अन्दर जला डालेंगे। तब मेरे हृदय में सिर्फ़ आपके लिए एक बहुत, बहुत अधिक मधुर प्रेम रह जायेगा।

तुमने जो यहाँ लिखा है वह बहुत सुन्दर और साथ ही बहुत सच है। सुन्दर चीज़ें गन्दी चीज़ों से कहीं अधिक मज़बूत हैं और वे निश्चय ही विजय पायेंगी। मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ, संघर्ष में भी और विजय में भी।

२९ जनवरी १९३४

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ९९-१०४

कर्म

जब लोग आश्रम में साधना करने तथा श्रीमाँ के संरक्षण में रहने के लिए आते हैं तो क्या उनके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि अपनी साधना की प्रगति के लिए वे आश्रम का कुछ काम करें?

उन्हें करना चाहिये।

क्या उन्हें श्रीमाँ से काम के लिए पूछना चाहिये या फिर श्रीमाँ उन्हें स्वयं काम दें इसके लिए प्रतीक्षा करनी चाहिये?

अगर उनके अन्दर सच्ची भावना होगी, तो वे स्वयं कार्य के लिए पूछेंगे।

कभी-कभी जब साधक श्रीमाँ से अपना मनपसन्द काम करने की अनुमति माँगे तथा श्रीमाँ उसे दे दें, तो क्या उसे श्रीमाँ के लिए किया गया काम कहा जा सकता है?

साधक को किसी भी तरह का काम करने के लिए तैयार रहना चाहिये, सिर्फ़ उसकी पसन्द का ही नहीं।

कुछ लोगों का कहना है कि अगर साधक श्रीमाँ से काम करने की अनुमति माँगे तथा श्रीमाँ उसे दे दें तो प्रत्यक्ष रूप से उसे श्रीमाँ का काम नहीं कहा जा सकता। केवल वही कार्य जो स्वयं श्रीमाँ द्वारा दिया गया हो, उनका काम है, क्या यह सच है?

यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

मैं देखता हूँ कि जब कभी आश्रम में कोई काम करना आवश्यक होता है तब साधारणतः साधक कहते हैं: "अगर श्रीमाँ मुझसे काम करने के लिए कहेंगी, तो मैं करूँगा।" इस प्रकार अक्सर श्रीमाँ के नाम पर आवश्यक कार्य की उपेक्षा कर दी जाती है। जब वे श्रीमाँ के नाम पर इन्कार कर देते हैं तो क्या यह उनकी सच्चाई की निशानी है?

अगर वे सच्चाई के साथ श्रीमाँ के मार्गदर्शन पर निर्भर करते हैं तो यह ठीक है; अगर यह जो काम किया जाना चाहिये उसे न करने का बहाना-मात्र है, तो यह अलग चीज़ है। परन्तु यह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करता है—एक व्यक्ति का विवेक दूसरे के विवेक के समान नहीं होता और न सामान्य समझ ही। कोई व्यक्ति किसी काम के लिए सोच सकता है कि इसे करना सही है, जब कि दूसरा इसे उसी समान दृष्टि से नहीं भी देख सकता।

कभी-कभी किसी काम के लिए तत्काल मदद की ज़रूरत पड़ती है और उसके लिए किसी साधक से सम्पर्क किया जाता है, वह कहता है: "मैं श्रीमाँ की आज्ञा के बिना एक मिनट की भी सहायता नहीं दे सकता।" क्या यह वह अपनी निष्कपट समझ से कहता है?

सामान्यतः वह निष्कपट नहीं होता—इसका मतलब है कि वह करना नहीं चाहता।

आश्रम में कुछ लोग कहते हैं: "अगर श्रीमाँ स्वयं हमें कोई काम नहीं देना चाहतीं, तो भला हमें उनसे काम क्यों माँगना चाहिये? अगर यह उनकी इच्छा है तो वे ख़ुद हमें काम देंगी, तो हमें पूछने की कोई ज़रूरत नहीं।" ये लोग अपनी समझ में कितने सही हैं?

जब कोई काम करना हो तो इसका कोई कारण नहीं कि व्यक्ति काम में हाथ बँटाने का प्रस्ताव न रखे। कई बार काम करना होता है और कोई उसे करने के लिए आगे ही नहीं आता, तो काम सम्पन्न ही नहीं होता। आश्रम का ज़्यादातर काम मुट्ठी-भर लोगों के द्वारा ही किया जाता है, जब कि दूसरे बहुत कम काम करते हैं या बस वही करते हैं जो उन्हें पसन्द हो।

यह लिखने का आपका क्या अभिप्राय है कि "आश्रम का ज़्यादातर काम मुट्ठी-भर लोगों के द्वारा किया जाता है, जब कि दूसरे बहुत कम काम करते हैं या बस वही करते हैं जो उन्हें पसन्द हो"? तो क्या इसका यह मतलब हुआ कि अन्य लोग सिर्फ़ अपने सन्तोष या सुविधा के लिए काम करते हैं, श्रीमाँ के लिए नहीं?

मैंने बस इस तथ्य का उल्लेख किया है कि उत्साही कार्यकर्ता कम हैं और

जब कभी कोई काम करना होता है तो वे वही होते हैं जो आगे आते हैं —बाक़ी लोग उत्साह के बिना कुछ निर्धारित काम करते हैं जिन्हें वे चुनते हैं या फिर कुछ नहीं करते अथवा व्यावहारिक रूप से कुछ भी नहीं।

जब कोई साधक अपने-आपको ध्यान करने के लिए असमर्थ पाता है, तो क्या वह सिर्फ़ श्रीमाँ के लिए काम करके साधना में प्रगति कर सकता है?

यदि वह माँ और उनकी चेतना तथा शक्ति के प्रति खुला रह कर, समर्पित भाव से कर्म करे तो ऐसा हो सकता है।

यदि कोई व्यक्ति आश्रम का जीवन अपनाता है तथा श्रीमाँ द्वारा दिया गया काम निष्कपटता से करता है, लेकिन देखता है कि बहुत बार वह बुरी अवस्था में पहुँच गया है, तो क्या सचमुच वह साधक नहीं है? क्या इसका यह मतलब हुआ कि वह समर्पण की सच्ची भावना से काम नहीं कर रहा?

यह साधक पर निर्भर करता है। कोई भी सारे समय अच्छी स्थिति नहीं अपना पाता, बात यह नहीं है। अगर वह मौलिक रूप से अपने काम और साधना में निष्कपट है, तो वह साधक है; लेकिन अगर वह काम केवल इसलिए करता है क्योंकि उसे काम करना है या अगर वह स्वार्थ-भाव से काम करता है तो इसे समर्पित भाव से काम करना नहीं कहा जा सकता।

कुछ लोगों का कहना है कि कई लोग जो साधना के बारे में कुछ नहीं समझते, उन्हें श्रीमाँ द्वारा स्थायी साधक के तौर पर ले लिया जाता है तथा केवल योग की सम्भावना में आने का अवसर देने के लिए कुछ काम दे दिया जाता है। इसमें सच्चाई क्या है?

वे जो कह रहे हैं उसमें कोई तुक नहीं दीखता।

मेरा विश्वास है कि श्रीअरविन्दाश्रम एक दिव्य स्थान है तथा अगर कोई व्यक्ति यहाँ आता है और कुछ काम ले लेता है तो यह भागवत शक्ति है जो उस कार्य को हाथ में ले लेने के लिए उसका

मार्गदर्शन करती है और अगर वह श्रीमाँ के प्रति समर्पित भाव से कार्य करता है तो वह माँ का उपकरण बन जाता है। स्वयं आश्रम का वातावरण उसे इस मनोभाव को अपनाने के लिए प्रेरित करेगा। क्या मेरा विश्वास सही है?

आश्रम के वातावरण में ऐसी शक्ति हो सकती है और है भी, पर व्यक्ति की आन्तरिक सहमति भी आवश्यक होती है।

आज जब 'क्ष' हमारे काम में शामिल होने के लिए आया, 'य' ने उसे मज़ाक में कह दिया: "तुम इस काम के लिए क्यों आये? यह बहुत मुश्किल है। इसे छोड़ देना बेहतर है।" हालाँकि वह मज़ाकिया अन्दाज़ में कह रहा था, लेकिन क्या इस तरह की बात दूसरों को नुकसान नहीं पहुँचा सकती?

हाँ। ऐसी बातों का कोई फ़ायदा नहीं और ये नुकसान पहुँचा सकती हैं।

क्या आध्यात्मिक चेतना में विकसित होने तथा अतिमानसिक सत्य को उपलब्ध करने के लिए कार्य करना अपरिहार्य है?

साधारण मन से निकल कर आध्यात्मिक चेतना में विकास ध्यान, समर्पित कार्य या भगवान् के प्रति भक्ति से सम्पन्न किया जा सकता है। हमारे योग में, जो न केवल स्थिर शान्ति या आत्मसात्करण चाहता है, बल्कि ऊर्जस्वी आध्यात्मिक क्रिया की भी माँग करता है, कार्य करना अपरिहार्य है। अतिमानसिक सत्य के लिए बात अलग है; वह सिर्फ़ भागवत अवतरण पर और परमा शक्ति की क्रिया पर निर्भर करता है और वह किसी प्रणाली या नियम द्वारा बाध्य नहीं होता।

क्या साधक के लिए कार्य द्वारा अतिमानस को पाना सम्भव है?

यदि वे उचित चेतना में रहें तो यह सम्भव है।

श्रीमाँ ने लिखा है: "कार्य करने का भ्रम मानव स्वभाव के सबसे बड़े भ्रमों में से एक है।" यहाँ भ्रम का क्या अर्थ है?

भ्रम का अर्थ है कि वे सोचते हैं कि उन्हीं की क्रिया सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण

है और यह कि उस क्रिया के अहंकारपूर्ण लक्ष्य ही 'सत्य' हैं और उसी का उन्हें अनुसरण करना चाहिये।

मैंने देखा है कि जब मैं अकेला होता हूँ और कोई काम नहीं करता तो मैं पूर्ण शान्ति तथा अभीप्सा से भरा होता हूँ, लेकिन जब मैं काम के क्षेत्र में कूद पड़ता हूँ और दूसरों के सम्पर्क में आता हूँ तो काफ़ी मुश्किलें पैदा होती हैं तथा मेरी शान्ति और अभीप्सा ग़ायब हो जाती हैं। इसका क्या कारण है?

यह कार्य तथा गतिशीलता में शान्त रहने और समर्पण करने की कठिनाई है; जब कोई काम नहीं होता और तुम बस स्थिर बैठे रहते हो तब चुप रहना आसान होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि साहित्यिक या कलात्मक क्षमता के बिना कोई व्यक्ति साधना में प्रगति ही नहीं कर सकता और भागवत कार्य के लिए यन्त्र भी नहीं हो सकता। क्या यह सच है?

यह सब बकवास है। कुछ लोग जो सबसे अधिक प्रगति कर रहे हैं, न अच्छी तरह लिख पाते हैं और न कोई कला ही जानते हैं।

—श्रीअरविन्द

जब तुम थक जाते हो तो अधिक परिश्रम करके अपने-आपको अत्यधिक मत थका दो, बल्कि विश्राम करो—केवल अपना सामान्य कार्य करो; अशान्ति के साथ सारे समय कुछ-न-कुछ करते रहना उसे दूर करने का पथ नहीं है। वास्तव में जब थकावट का ऐसा बोध हो तो आवश्यकता इस बात की है कि अन्दर और बाहर स्थिर-अचञ्चल रहा जाये। सदा ही एक बल तुम्हारे समीप विद्यमान रहता है जिसे तुम अपने अन्दर पुकार सकते हो और इन चीज़ों को दूर कर सकते हो, परन्तु उसे ग्रहण करने के लिए तुम्हें शान्त-स्थिर बने रहना सीखना होगा।

—श्रीअरविन्द के एक पत्र से

यदि !

मौत यदि रुकती नहीं तो
जन्म भी रुकता कहाँ है !

एक क्षण यदि और है तो
दूसरा क्षण कुछ और है
रूप पल-पल पर बदल कर
और कुछ है, और कुछ है
यह अखण्ड विधान जग में
रंच भी झुकता कहाँ है
मौत यदि झुकती नहीं तो
जन्म भी रुकता कहाँ है !

यदि तुम्हारे वक्ष में साँस
बाँहों में भरा है बल
काल-सरिता की लहर पर
आँक दो गति-चित्र निर्मल
सिन्धु समझो बिन्दु पर यह
बिन्दु में चुकता कहाँ है
मौत यदि रुकती नहीं तो
जन्म भी रुकता कहाँ है !

दुःख केवल दुःख ही यदि
सत्य है तो और क्या है
अश्रु-सिञ्चित हास पुलकित
ज़िन्दगी फिर और क्या है
ज़िन्दगी का मोल केवल
मौत से चुकता कहाँ है।
मौत यदि रुकती नहीं तो
जन्म भी रुकता कहाँ है !

'मधु-सञ्चय' से साभार —अज्ञात

अगला पड़ाव—मृत्यु

"बड़े शौक से सुन रहा था ज़माना, तुम्हीं सो गये दास्तां कहते-कहते।"

अगला पड़ाव—मृत्यु—एक ऐसी प्रेरक यात्रा है जो प्रकाश और आशा से होती हुई हमें एक ऐसे लोक में पहुँचा देती है जहाँ पृथ्वी के दुःख-दर्द पीछे छूट जाते हैं। अहोभाव तथा आश्चर्य से भरी इस यात्रा में सभी बन्धन टूटते जाते हैं।

अपने-आपको आराम तथा प्रसन्नता के ऊपर उठते हुए भाव में खो जाने दो। एकता की हर्षद आत्मा का आलिंगन करो। स्वयं को बह जाने दो उस विशाल प्रेम में जो असीम है।

अगला पड़ाव ज्योति से, संगीत से भरपूर है। उसकी ऊष्मा से अपने हृदय को स्पन्दित करो और जीवन की अनन्त उड़ान में पर तोलो...

मेरा अगला पड़ाव होगा, शान्ति से भरपूर, जाना-पहचाना। मानों हलकी-हलकी धूप में नहाया ख़ुशगवार इतवार... और जहाँ होगा सब कुछ मधुरिमा में लिपटा, शान्ति से सिंचा हुआ। वह होगा ऐसा सुखद पड़ाव जो मैंने न उस धरती पर कभी देखा होगा, न कभी सोचा होगा जिस धरती को मैं पीछे छोड़ आया हूँ। वह होगा ऐसा अनन्त जहाँ मैं इस ज्ञान से सीमित न रहूँगा कि मैं कहाँ जा रहा हूँ, मैं कहाँ से आया हूँ क्योंकि "कब" और "कहाँ" को बहुत पीछे छोड़, मैं तो हमेशा 'शाश्वत' में विचरता रहूँगा। इन्द्रधनुषों से फिसलता, हवा के संग-संग बहता हुआ मैं आकाश के परे 'आश्चर्य' के लोक में अपने पंख पसारूँगा, वहाँ पहुँच कर मुझे आश्चर्य भी न होगा; न मुझे याद रहेगा कि मैं यहाँ कैसे आया, बस मैं वहाँ पहुँच जाऊँगा, लेकिन मुझे पक्का पता होगा कि मैं 'यहीं' का हूँ। वहाँ पहुँच कर मैं अनुभव करूँगा कि हाँ, अब मैं 'जीवन' जी रहा हूँ, ऐसा जीवन जैसा पहले कभी नहीं जिया मैंने। मैं उन सभी चीज़ों से पूरी तरह से मुक्त हो जाऊँगा जिनको मैंने कस कर थामे रखा था, जिन्होंने मुझे मज़बूती से जकड़े रखा था।

मेरा वह अगला पड़ाव इतना शान्त, इतना स्थिर होगा कि धरती के मेरे अपनों का गुनगुनाता संगीत ऊपर उठ कर उसे अपनी मधुरता से भर देगा—आकाश सुनेगा वह संगीत—फैल जायेगी वहाँ आह्लादपूर्ण नीरवता;

वह होगा ऐसा अभूतपूर्व संगीत जिसे कोई बजा न रहा होगा—वह होगा हवा के पंखों पर सरसराता मौन! उस जीवन्त, साकार प्रकाश में अन्धकार के लिए कोई स्थान न होगा, वहाँ तो सतत उदीयमान उषा मरणासन्न रात्रि को पीछे धकेल देती है। वहाँ का सारा वातावरण प्रकाश से नहाया हुआ होगा, चन्द्रमा और करोड़ों सितारे एक ही प्रणय-सूत्र में बँधे होंगे।

मेरा अगला पड़ाव सचमुच कोई पड़ाव या तथाकथित स्थान ही न होगा; क्योंकि न होंगे वहाँ मौसम—शीत, ग्रीष्म, वसन्त, पतझड़... न होगा वहाँ सोमवार, न ही शुक्रवार, न दिसम्बर, न नवम्बर। और पल वहाँ ठिठके खड़े रहेंगे, जब कि घण्टे भागते दीखेंगे...। वहाँ न होऊँगा मैं बालक या बालिका, न पुरुष न स्त्री। मैं बस 'मैं' होऊँगा—न अच्छा, न बुरा क्योंकि अच्छाई-बुराई का न होगा वहाँ अस्तित्व। न होगा वहाँ मेरी त्वचा का रंग गेहुँआ या गोरा, श्यामल या ललछौंहा। न होऊँगा मैं लम्बा या नाटा, पतला या मोटा। जो शरीर कभी मेरा हिस्सा था उसमें मैं अब बिलकुल बँधा न रहूँगा। आख़िरकार मैं पूर्ण बन जाऊँगा, मेरे अन्दर एक दोष न रहेगा, न मैं ग़लती करूँगा, न ही किसी नियम का उल्लंघन। मेरे अन्दर जो क्षुद्र 'मैं' अधीर, अशान्त, अनिच्छुक था वह मेरी स्मृति से धुल-पुँछ जायेगा, उस 'मैं' को तो मैंने बहुत पीछे छोड़ दिया होगा...। उस पड़ाव के लिए मैं यहाँ से असबाब बटोर कर नहीं ले जाऊँगा—मेरे हाथ ख़ाली होंगे, ले जाऊँगा अपने दिल में समेट कर अपनों का प्यार, अपनों की ऊष्मा, उनके साथ बितायीं वे मधुर यादें, वे जादुई क्षण...। हालाँकि मैं एकाकीपन का हर्ष अनुभव करूँगा लेकिन मैं कभी अकेला न होऊँगा। हर पल मेरी बाँहों में रहेंगे मेरे परिवार-जन, मेरे वे दोस्त जिन्हें मैंने अपने पिछले पड़ाव में जाना-बूझा। हालाँकि मैं उनका चेहरा नहीं देख पाऊँगा लेकिन मेरे सभी प्रियजनों के दिल मेरे साथ धड़केंगे और हमारी आत्मा के प्रभामण्डल सूर्य के प्रकाश से भी अधिक चमकेंगे। जिस स्थान को मैं पीछे छोड़ आया हूँ वहाँ की सारी दोस्ती को, सारे प्रेम और हास्य को मैं अपने नैनों में समाये रखूँगा, अपने हृदय में सँजोये रखूँगा। अगले पड़ाव में वे सभी चीज़ें मेरे संग-संग चलेंगी और मेरे इन्हीं अपनों के प्रेम का सुनहरा प्रकाश शाश्वत काल तक मेरे उस अगले पड़ाव को आलोकित करता रहेगा...।

—अनु. वन्दना

हमने कौन-सा पुण्य किया था कि भागवत 'कृपा' ने हमें यह विरल सौभाग्य प्रदान किया कि यहाँ हम भगवान् के चरण-कमलों में पहुँच गये?

यह तुम्हारी अन्तरात्मा की पुकार थी जो तुम्हें यहाँ ले आयी और साथ ही यह तुम्हारे पिछले जन्मों की अभीप्सा रही होगी या फिर श्रीमाँ तथा मेरे साथ का कोई सम्बन्ध रहा होगा।

*

मेरे पिछले जन्मों की कौन-सी भक्ति मुझे श्रीमाँ के चरणों में ले आयी?

प्रभु के साथ ऐक्य की अभीप्सा और सम्भवतः यह भी कि प्रभु का धरती पर अवतरण हो।

*

भगवान् के दर्शन पाने के लिए लोग हर तरह का प्रयास करते हैं; कई रोते ही रहते हैं, विलाप करते रहते हैं, लेकिन फिर भी वे उन्हें पाने में सफल नहीं होते। हम आश्रमवासियों के बारे में तो ऐसा नहीं लगता कि हमने बहुत कुछ किया है, फिर भी हम यहाँ आपके साथ हैं, आपके पास हैं। यह कैसे हुआ?

बहुत सारी चीज़ें हैं जो तुम्हें यहाँ ले आयीं—श्रीमाँ तथा मेरे साथ तुम्हारे पिछले जन्मों का सम्बन्ध, पिछले जन्मों में तुम्हारी प्रकृति के विकास के द्वारा यह सम्भव हुआ कि इस जन्म में तुम प्रभु की खोज में लीन हो गये—उन जन्मों की भक्ति ने इस जीवन में तुम्हें फल प्रदान किया—यानी, अन्ततः, तुम्हें 'भागवत कृपा' प्राप्त हो गयी।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ८७-८८

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया मुखपृष्ठ के चित्र का आध्यात्मिक अर्थ)

ज्वाला

अपने उत्साह में लालित्यपूर्ण तथा विजयी

Date of Publicaion: 1st **November 2019**
(Monthly) Rs. 30

Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70